जीवन-दर्शन

सखी बाबा आसूदाराम साहिब

गुल.ए.पुरस्वानी

''आभार–पत्र''

परमपिता परमेश्वर, भगवद् स्वरूप श्री सद्‌गुरु देव एवं आप सभी संतों की अनन्त कृपा के परिणाम स्वरुप, आज परमपूज्य संत बाबा आसूदाराम साहिब जी का पावन जीवन–दर्शन प्रकाशित होकर, हम सभी के सम्मुख है। इस पावन अवसर पर, मैं स्वयं को परम अनुग्रहित अनुभव कर रहा हूँ।

इस अकिंचन पर अनन्त उपकार हैं, स्वयं संत श्री सांई आसूदाराम साहिब जी के, जो आत्मिक रूप से अब भी विद्यमान हैं और प. पू. संत श्री चाँड्रूराम साहिब जी के जिन्होंने स्वयं के, सब कार्य तो स्वयं सिद्ध किये और मुझ दास को निमित्त बना कर, मुझे इसका सुयश प्रदान किया। यही उनका परम अनुग्रह है मुझ पर।

प. पू. संत बाबा आसूदाराम साहिब जी के जीवन–दर्शन लेखन के समय मुझे अपार आत्मिक आनन्द की अनुभूति हुई। साथ ही उनके जीवन–दर्शन एवं जीवन–आदर्शों से अवगत होकर जीवन धन्य हुआ। इस हेतु मैं उनका सदा ही ऋणी रहूँगा। मेरे इस सम्पूर्ण लेखन को प. पू. श्री स्वामी चाँड्रूराम साहिब जी ने अपार कृपा कर अपनी पावन दृष्टि से अवलोकन कर, मुझे कृतार्थ किया। इसके लिये मैं उनका परम कृतज्ञ हूँ।

इस पुनीत कार्य में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष मेरे सहायक बने सभी साथियों का मैं हृदय से अत्यन्त आभारी हूँ। इस तारतम्य में मैं विशेष आभारी हूँ, सर्व श्री परमानन्द जोशी जी (इन्दौर) का, जिन्होंने मेरे इस सम्पूर्ण कार्य को बड़ी लगन से अपनी पैनी दृष्टि से निकाला तथा यथासंभव मार्ग दर्शन देकर मुझे कृतार्थ किया। मैं अभारी हूँ, सर्वश्री अमरलाल हबलानी जी एवं श्री करतार लाल दावानी जी (इन्दौर) का, जिन्होंने मुझे इस कार्य में सहयोग प्रदान किया। तदुपरान्त मैं सर्वश्री साईं मोहनलाल जी,

श्री हरीश वाधवानी, श्री सनमुख दास राजपाल (लखनऊ) तथा श्री सत्यानन्द सावलानी जी (रायबरेली) का भी परम आभारी हूँ, जिनका इस पुस्तक के मुद्रण एवं प्रकाशन में अपूर्व सहयोग रहा। मैं लॉ टाइम्स प्रेस एवं उनके सहयोगी साथियों का भी हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने अपने कला–कौशल से इस पुस्तक को सुन्दर रूप से संजोया है। मैं उपरोक्त सभी साथियों के लिये प्रभु से उनके परम मंगल की कामना करता हूँ।

इस जीवन–दर्शन से यदि किसी भी जीव मात्र की हित साधना होती है और उनका ईश्वर एवं सद्‌गुरु संत–महात्माओं के प्रति किंचित भी भक्ति–भाव वर्धन होता है, तो मैं दास अपने आप को इस पुनीत कार्य का माध्यम होने से स्वयं को धन्य अनुभव करूँगा

अनुलेखन करते समय इसमें जो कुछ त्रुटियाँ हो गयी हैं अथवा रह गयी हों, वे सब मेरी ही हैं। इसके लिये मैं आप सभी सज्जनों से क्षमा मांगता हूँ।

मैं एक बार पुनः ईश्वर, सद्‌गुरु एवं सभी संतों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए, यह पवित्र पावन ग्रंथ उन्हीं को समर्पित करता हूँ, जो वास्तव में उनकी कृपा के फल स्वरूप उन्हीं का ही है–

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।

– दासानुदास–गुल पुरस्वानी।

ψΨΨΨψ

प्रार्थना

हे प्रभु ! हे मेरे प्यारे सद्गुरु देव ! हे मेरे प्राणाधार ! यह दास आपके पावन श्री चरण–कमलों में बैठकर आप ही के महिमामय चरण–कमलों का आश्रय लेकर आप ही के सामर्थ्य पर, आज बैसाखी के पावन पर्व दिनांक १३ अप्रैल को, जो अपने परम गुरुदेव एवं आपके सर्वस्व, सर्वसमर्थ, सर्वशक्तिमान, जगतपूज्य, अवतार पुरुष, सद्गुरु अमर शहीद संत श्री भगत कँवरराम साहिब का पृथ्वी पर प्राकट्य दिवस है, उनके महान् विनम्र, प्यारे शिष्य संत आसूदाराम साहिब जी का जीवन–दर्शन लिखना प्रारम्भ कर रहा हूँ।

हे सर्वसमर्थ स्वामी ! आप अपनी अहेतु कृपा से मुझ अकिंचन दास को ऐसा सामर्थ्य प्रदान करें, कि मैं मंद–बुद्धि दास आपके प्यारे गुरु– भ्राता का जीवन दर्शन ऐसा सुन्दर एवं सरल रूप से वर्णन कर सकूँ, जो हे नाथ ! आपको सब प्रकार से रुचिकर हो और स्वीकार्य हो।

हे नाथ ! मुझे निर्मल आशीर्वाद प्रदान कर कृतार्थ करें। यह दास सदा सर्वदा आपके श्री चरण–कमलों का ऋणी है और ऋणी रहेगा।

ॐ नारायण ! नारायण ! ! नारायण ! ! !

– गुल पुरस्वानी

ψΨΨΨψ

विनय

हे ऋषीश्वरों ! वस्तुतः यह चरित्र, गुण, लीला सब आप ही का है, जो समय–समय पर आप जीवमात्र के कल्याण के निमित्त प्रदर्शित करते रहते हैं। वैसे तो आप तीनों गुणों से परे, सदा एक रस, नाम रूप से अतीत, आत्म–स्वरूप में स्थित हैं। हे मुनीश्वरों ! इन चरित्र–गुण–लीलाओं का वर्णन आपके सम्मुख इस हेतु से किया जा रहा है, कि आप अपने ही आनन्द का आस्वादन, अपने **आत्म–स्वरूप** में निमग्न रह कर, आप ही करें। जिस प्रकार इस अखिल विश्व का सृजनहार परमपिता परमेश्वर अपने आप में आप स्थित हुआ, अपने द्वारा रचे हुए ब्रह्माण्ड को नाम रूप लीला से क्रियान्वित कर, स्वयं अपना आनन्द आप प्राप्त कर रहा है।

यह दिव्य–जीवन चरित्र निश्चय ही सब ऋषि संतानों के परम कल्याण का मार्ग प्रशस्त करेगा क्योंकि यह मार्ग आप ही का प्रशस्त किया हुआ और अनुसरण किया हुआ है!

हे विप्रवर ! इस अकिंचन को आप अपनी अहेतु कृपा प्रदान कर इस दिव्य–चरित्र का वर्णन करने के लिए सामर्थ्य प्रदान करें। कदाचित् वर्णन में कुछ भूल या त्रुटि हो, तो अपना दास समझकर मुझे क्षमा करें और सही सार को ग्रहण कर, अपने उदात्त स्वभावानुसार ''साधु ऐसा चाहिए, जैसे सूप सुभाय'' को सार्थक करें और इस बालक को प्रभु श्री रामचन्द्रजी के चरणों में प्रीति का आशीष दें, क्योंकि हे संतों ! आप सरल चित्त और जगत हितकारी हैं।

"सन्त सरल चित जगतहित, जानि सुभाउ सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा, राम चरन रति देहु।।''

ψΨΨΨψ

ψΨΨΨψ

हे सद्गुरु देव! आपकी ही

‘कृपा–प्रसादी’ पूर्ण निर्विकार भाव

से आपके ही पावन कर–कमलों में

समर्पित है।

–दासानुदास

गुल पुरस्वानी

ψΨΨΨψ

ψΨΨΨψ

समर्पित

संत बाबा आसूदाराम साहिब के ज्येष्ठ पौत्र
सांई अजीत लाल जी को समर्पित।

ψΨΨΨψ

—: दिव्य—आचरण :—

- समदृष्टिपूर्ण अवलोकन।
- आगन्तुक अतिथि का आदर—सत्कार।
- द्वार पर आये याचकों को निराश न लौटाने का भाव।
- भक्तों (गीत—गायकों) पर धन न्यौछावर करने की उदार प्रवृति।
- डेवरी साहब में भोग लगाकर भोजन पाने का नियम।
- सदैव अनुशासनमय भाव में रहना।
- दरबार—साहिब की वस्तुओं को स्पर्श किये बिना परिक्रमा लेना।
- रूचिकर व्यन्जन पेड़े को अन्य समवयस्क बच्चों में वितरित करके सूक्ष्म रूप में प्रसाद ग्रहण करना।
- सभी का सादर अभिवादन।

—: महाकाल :—

ग्रीष्म ऋतु में पूज्य दादी जी के साथ वैवाहिक उत्सव में सम्मिलित होने "जरवारनि" ग्राम में जाना हुआ। उस ग्राम में तथाकथित "गुरुदास माँ" की घर की छत पर दोपहर में चढ़ कर चले गये। छत पर तप्त धूप में रहने के कारण, नग्न पाँव होने की दशा में, वे वहाँ अचेत हो गये। कुछ समय के पश्चात ढूंढ़ने पर वे अचेतन अवस्था में छत पर मिले।

आरम्भ में बड़ी माता (चेचक) के लक्षणों के दृष्टिगत होने पर शीतला माता के पूजन (छण्डे) आदि का उपचार हुआ। ३—४ दिन झाड़—फूँक भी करवाई गई। प्रथम आवृति में १५ दिवसीय चिकित्सकीय उपचार सक्खर नगर में हुआ। द्वितीय चरण में क्वेटा नगर के "सिविल अस्पताल" एवं "मशीन अस्पताल" में एक माह तक सघन उपचार चलता रहा। रहड़की साहिब में साईं

भगवान दास जी की शरण में गुरू दरबार भी ले जाया गया। यहाँ 2–3 दिन रहकर उन्हें घर वापस लाया गया।

अन्तिम ज्योतिर्मय क्षणों में सम्पूर्ण परिजनों द्वारा भरसक सेवा की गई। इस परम विलक्षण बालक ने अपने समस्त उपस्थित परिजनों के मध्य रात्रि 10 बजे लौकिक जीवन की अन्तिम साँस लेकर सत्यनिष्ठ प्रणेता ने मात्र 2 वर्ष 8 माह की अल्पावस्था में अपने पुण्य पार्थिव शरीर को सुखपूर्वक त्याग दिया तथा चिन्मय परमात्मा स्वरूप में सदैव के लिये ब्रह्मलीन हो गये। इस हृदय विदारक, शोकाकुल बेला में रहड़की दरबार के साईं निरन्जन लाल जी भी उपस्थित थे।

इस विलक्षण प्रतिभा–सम्पन्न बालक को श्रद्धांजलि अर्पित करने हेतु विशेष रूप से साईं बहरूराम साहिब (घोटकी दरबार), साईं केवल राम साहिब (ड॒हरकी दरबार) एवं भाई विशन दास जी (पिथाफी दरबार) सम्मिलित हुये।

ψΨΨΨψ

सत्नाम

नारायण ! **नारायण !** **नारायण !**

शहँशाह संत सतरामदास साहिब की जय।
शहँशाह अमर शहीद संत कँवरराम साहिब की जय।
शहँशाह पू. श्री सद्गुरु देव भगवान् की जय।

‘स्तुति’

ॐ श्री गणेशाय नमः

आहे जेडो तुहिंजो नाउँ, तेडी तोखां बाझ घुराँ,
तूँ थम्भो, तूँ धूणी, तूँ छप्पर, तूँ छाँव,

आउं कुजाणो कहाउं, जो मइलूम तोखे सभकी।
मूँ निमाणी मिसकीन जी, शल पवन्दी बाझ पिरियुनि,
कइयो थमि माणु मणनि जो, शल दुको दाखिल कनि,
मूखे ऐबनि खां आजो करे, मुहिंजे शल डोहनि डे न डिसनि,
फजुल सां परिचनि, जो मुईअ सां करिन न मामड़ो।

तुध आगे अरदास हमारी, जीअ पिण्ड सब तेरा।
कहु नानक सबु तेरी वडिआई, कोई नाम न जाणे मेरा।।

सोई कराइ जो तुधु भावै, मोहि सिआणप कछु न आवै।
हम बारिक तउ सरणाई, प्रभि आपे पैज रखाई।
मेरा मात पिता हरि राइआ
करि किरपा प्रतिपालण लागा, करीं तेरा कराइआ।
जीअ जन्त तेरे धारे, प्रभु डोरी हाथ तुमारे।
जि करावै सोई करणा, नानिक दासि तेरी सरणा।

‘‘कहु नानक सब तेरी वडिआई, कोई नाम न जाणै मेरा’’

ψΨΨΨψ

आरती

ओम जय बाबा आसूदाराम, ओम जय बाबा आसूदाराम।
आरती करयूँ था गड़जी, मिली संगत त आम।
ओम जय बाबा आसूदाराम....

१. जतोइन में साईं जनमु वठी, कयुव रहिड़कीय गुरू स्थान।
सतगुरू सतरामदास मिहर कई तोते, कई किरपा कँवरराम।
ओम जय बाबा आसूदाराम....

२. पन्ने आकिल में ड़ेरो वसाए, भजनु कयुव त तमाम।
सारी संगत खे नामु जपाए, कयव सभ जा कल्याण।
ओम जय बाबा आसूदाराम....

३. जहिं–जहिं दर ते शेवा कयड़ी, तिन ते थ्यउ मेहरबान।
आश वंदा जेके अचिन सवाली, तिन जा कन्दउ काम।
ओम जय बाबा आसूदाराम.

४. हाणे लखनऊ में आश्रम बणियो आ, तव्हांजी मिहर हुकुम सां राम
जिते देवियूँ कन्याऊं सभु अचनि थियूं, बार बुढा ऐं जुवान।
ओम जय बाबा आसूदाराम...

५. कुर्भु करे था अची प्रेमी, तव्हांजी चोड़स मल्हाइन महान।
शिव शान्ती जो दर्शन पाए, वठनि अंदर में आराम।
ओम जय बाबा आसूदाराम....

६. बारहें–बारहें महीने वर्सी थिए थी, मेलो लगे आलीशान।
जिते भण्डारो त खूब हले थो, भजन भी थे थो जाम।
ओम जय बाबा आसूदाराम....

७. दासन दास तोखे अर्जु करे थो, दया कंजो दयावान
तुहिंजे चरणनि में सीरड़ो रहे, बक्शो आतम जो ध्यान।
ओम जय बाबा आसूदाराम....

धन–धन सखी बाबा आसूदाराम साहिब की जय !

ψΨΨΨψ

अनुक्रमणिका

		पेज नं०
सन्त श्री आसूदाराम साहिब का जीवन–दर्शन		6–14
1.	अवतरण	15–21
2.	सन्त एवं सद्गुरु	22–25
3.	सद्गुरु–मिलन	26–34
4.	विरह की तीव्र वेदना	35–43
5.	सद्गुरु के दरबार में आगमन	44–46
6.	सद्गुरु सांई सन्त कँवरराम साहिब	47–54
7.	सद्गुरु–सेवा	55–59
8.	गौ–सेवा	60–65
9.	नाम–रत्न से धन्य होना	66–71
10.	निज गाँव वापसी एवं दरबार स्थापना	72–77
11.	दिनचर्या	78–85
12.	विवाह	86–93
13.	उन पावन दिनों की कुछ यादें	94–102
14.	सन्त दयाल सन्त बाबा आसूदाराम साहिब जी	103–121
15.	मेरे अन्तर्यामी समर्थ स्वामी	122–155
16.	महासमाधि	156–170
17.	घटनाक्रम सन्त बाबा आसूदाराम साहिब जी	171–173
18.	सन्त सांई चाँड्रूराम साहिब जी संक्षिप्त जीवन–परिचय	174
19.	सखी बाबा जन्म–शताब्दी समारोह	183–205
20.	संत बाबा आसूदाराम साहिब 50वाँ निर्वाण महोत्सव	206
21.	पूज्य माता साहिब बैंसरदेवी 25वाँ निर्वाण महोत्सव	209
20.	धुनी–साहिब	210–212

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम आवृतिः- अगस्त, 1997

द्वितीय आवृतिः- दि. 01-01-2024

प्रकाशकः- शिव शांति संत आसूदाराम आश्रम,
संत आसूदाराम मार्ग (वी.आई.पी. रोड),
आलमबाग़, लखनऊ (उ.प्र.)

मुद्रकः-

सेवाः- रु.50/-

ψΨΨΨψ

संत श्री आसूदाराम साहिब जी का

जीवन–दर्शन

ψΨΨΨψ

अध्याय 1

अवतरण

माँ के गर्भ में यह जीव उल्टा लटका घोर दुःख को भोगता हैं। नरक–सम इस वेदना से व्यथित यह जीव, गर्भ में ही ईश्वर से नाना प्रकार से अनुनय–विनय करता है। इस अनुनय–विनय में यह जीव प्रभु से प्रण करता है, *''हे प्रभु! मुझे इस नरक–सम याचनामय गर्भ से बाहर निकालो, मैं आपको वचन देता हूँ, कि मैं बाहर जाकर नित्य–निरंतर आपका स्मरण भजन करता रहूँगा।''* करुणामय प्रभु ! जीव पर 'कृपा' कर और उसके इस 'वचन' पर विश्वास करके उसे गर्भ से बाहर निकालते हैं, कि निश्चय ही मेरा यह जीव बाहर जाकर अपने वचनानुसार मेरा स्मरण–भजन करेगा। माँ के गर्भ से बाहर आते ही, यह माता की ममता में, पिता के लाड़–प्यार में, भाई–बहनों के स्नेह–जाल में एवं बाहरी संसार की चमक–दमक में पूर्णतः मोहित हो जाता है। यहाँ तक कि उसे कुछ क्षण पहले प्रभु से किये वचन का विस्मरण ही हो जाता है और यह जीव इस वचन को प्रायः जीवन पर्यन्त विस्मरण कर, इस संसार की मीना–बाजार में ऐसा भ्रमित हो जाता है, कि कदाचित् उसे महापुरुषों एवं सत्शास्त्रों द्वारा समय–समय पर अपने किये 'वचन' का स्मरण कराने पर भी, अपने इकरार अनुसार वह उस सृजनहार ईश्वर का स्मरण भजन नहीं कर पाता है। इस प्रकार जीवन–पर्यन्त सुख–दुःख के भँवर में डूबता–उतरता अन्ततः पुनः–पुनः जन्म–मृत्यु के घोर दुःख को प्राप्त होता है।

"पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्"

स्पष्ट ही लाखों–करोड़ों में विरला ही प्रभु–कृपा से मातृ–गर्भ में किये इस 'वचन' को बाहर आकर याद करता है

और तद्नुसार जन्म से ही इस संसार की महामोहिनी माया से अपने आपको निःसंग रखता है।

संत श्री आसूदाराम साहिब जी के जीवन–दर्शन का सार है, कि किस तरह जीव अपने वचनानुसार उस प्रभु–परमात्मा का स्मरण–भजन करता है और अपने वचन को पुष्पित एवं पल्लवित करता है –

मात गरभ दुख सागरो पिआरे, तह अपना नामु जपाइआ।
बाहरि काढि बिखु पसरीआ पिआरे, माइआ मोहु बधाइआ।।
जिसनो कीतो करम आपि पिआरे, तिसु पूरा गुरु मिलाइआ।
सो अराधे सासि सासि पिआरे, राम नाम लिव लाइआ।।

निश्चय ही, इसमें उक्त जीव के जन्म–जन्मान्तरों में की हुई साधना एवं प्रभु–परमात्मा की अहेतु कृपा सर्वोपरि है, किन्तु इस प्रकार का जीवन संसार में अति दुर्लभ है। श्रीमद् भगवद् गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने उसे स्पष्ट करते हुए कहा है–

'एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्' (गीता ६/४२)

जन्म से संसार की महा–माया से ऐसी पूर्ण निःसंगता एवं प्रखर वैराग्य के बिना कदापि नहीं आती। हमारे धर्मशास्त्रों में ऐसे बहुत थोड़े चरित्र देखने को मिलते हैं, जिनमें जन्म से ही ऐसा तीव्र वैराग्य देखने को मिलता है। महावीर स्वामी, गौतम बुद्ध, शुकदेव इत्यादि ऐसी ही महान आत्माएँ थीं। ऐसा ही एक और चरित्र हमें देखने को मिलता है और वह है– 'संत आसूदाराम साहिब जी' का।

संत आसूदाराम साहिब का जन्म

पावन एवं प्राचीन अविभाजित भारत की महत्वपूर्ण भूमियों में सिंध प्रांत का नाम निःसंदेह सर्वोपरि है। इसी पावन भूमि के पग–पग पर समय के अंतराल से अनेक सच्चे पूर्ण भक्त, संत,

दरवेश, फकीरों ने जन्म लिया। उसी पवित्र भूमि के सक्खर जिले की पन्नो आकिल तहसील में 'जतोइन' नाम का गाँव है। जहाँ एक सामान्य आय वर्ग का गुरमुख परिवार रहता था। नेक रहनी और अपने आप में संतुष्ट इस परिवार के मुखिया का नाम भाई लुधड़ोमल जी था। इस परिवार का गुजर–बसर खेती–बाड़ी से होता था। भाई लुधड़ोमल जी को ईश्वर ने पाँच पुत्र संतानें प्रदान की थीं, जिनके नाम क्रमानुसार भाई गेलानन्द, **सांई आसूदाराम साहिब,** भाई रीझूमल, भाई चोटरमल, भाई खीअलदास थे।

रामनवमी मार्च 1895 का दिन भाई लुधड़ोमलजी के जीवन में परम सौभाग्य का दिन बनकर आया। जिस दिन उनके घर ऐसे पुत्र–रत्न ने जन्म लिया, जो अपने साथ जन्म से ही वैराग्य की वह पूंजी लाया था, जिस पूंजी के समक्ष स्वर्ग का वैभव भी तुच्छ प्रतीत होता है। प्रभु की परम कृपा से ऐसे पुण्यशाली पुत्र की माता चैनीबाई अनायास ही उस पद को प्राप्त हुई है, जो पद जगत में सर्वदा वन्दनीय है और श्री लधुड़ोमल जी का कुल धन्य हुआ है।। श्री शिवजी कहते हैं–

"सो कुल धन्य उमा सुन, जगत पूज्य सुपुनीत।
श्री रघुवीर परायण, जेहिं न र उपज विनीत।।''

''हे उमा ! सुनो, वह कुल धन्य है, जगत में पूज्य एवं परम पवित्र है, जहाँ भगवान् के पवित्र, निर्मल, परमभक्त जन्म लेते हैं।''

आज उस ब्राह्मण की ज्योतिष विद्या धन्य हुई है, जिन्होंने बालक के ग्रह–गोचर जाँचकर उनका नाम **"आसूदा''** रखा है। सिंधी भाषा में **आसूदा** शब्द का अर्थ **सम्पन्न** होता है। निःसन्देह इससे अधिक सम्पन्नता और कौन सी हो सकती, जो वैराग्य की ऐसी अद्वितीय संपदा साथ लिये हो, जिसके आगे जगत के भोगों

की, स्वर्ग के सुखों की, जीवन एवं मरण, हर्ष–शोक की कोई भावना ही न हो।

ऐसे असाधारण बालक की इस विशेषता से अनजान घर–परिवार और पास–पड़ोस के सब नर–नारियों की दैनिक जीवन–चर्या नित्य की भाँति सामान्य चलती रही। छरहरा बदन, मुख पर मासूमियत एवं भोलाभाव लिये स्वभाव से शांत यह बालक अनायास ही सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। सभी नर–नारियाँ उसे लाड़–प्यार करते थे।

समय के साथ बालक को 6 वर्ष की आयु में पढ़ने हेतु पाठशाला भेजा गया। पाठशाला में दूसरी–तीसरी कक्षा तक इस बालक की मनःस्थिति स्पष्ट रूप से उभर कर माता–पिता तथा सबके सामने आने लगी। हर हाल में संतुष्ट यह बालक, जैसे पूर्व–जन्म के चैतन्य से यह जान चुका हो, कि सब प्रकार से अपूर्ण इस संसार में संतुष्ट होने के लौकिक प्रयास करना वैसा ही निष्फल है, जैसे घी के लिए पानी बिलोना। अतः वह माता–पिता, भाई–बहनों एवं पाठशाला में सहपाठियों से सदा संतुलित व्यवहार कर अपने विचारों में मग्न रहता। सामान्य बालकों की भाँति उसमें न शोरगुल, न ही खेल–खिलौने के प्रति विशेष चाह थी। घर–बाहर जो मिले उसी में संतुष्ट, न शिकवा, न शिकायत। भीतर–ही–भीतर अपने ख्यालों में गुम–सुम यह बालक कभी दूर एकान्त में बैठा रहता, कभी अपने काम तथा दैनिक क्रिया में मग्न रहता। संसार के प्रति चाह नहीं, लगन–लालच नहीं। भला जो संसार के सारे व्यवहारों को, प्रयासों को, अनेक जन्मों में करके देख चुका हो और यह जान चुका हो, कि संसार के सब व्यवहार, सब सुख अंततः अपूर्णता तक ही सीमित हैं, अर्थात् अनित्य हैं, तो पुनः–पुनः ऐसा व्यर्थ प्रयास किस लिए करना ! बस ! यही ख्याल–विचार उसे बार–बार संसार के प्रति खिन्न करते एवं सोचने को फिर मजबूर करते,

कि आखिर किस कर्म, क्रिया एवं व्यवहार से अखण्ड सुख, अखण्ड शांति की प्राप्ति हो, जिससे यह जीवन पुनः खिन्नता दुःख, असंतोष, आवागमन और इस गर्भ पीड़ा को प्राप्त न हो।

''प्राणी कउनु उपाय करै,
जाते भगति राम की पावै।
जम को त्रास हरै।।''

कारण कि संसार वस्तुतः दुःखालय अर्थात् दुःख का घर ही है, जो कभी एक रस न रहा। जिस संसार के सुख, भोग, मित्र–संबंधी, यहाँ तक कि स्वयं का शरीर भी स्थिर नहीं रहता। जहाँ सब कुछ नश्वर है, कुछ भी शाश्वत नहीं और सद्शास्त्र भी यही बात बार–बार दोहराते हैं–

"अनित्यमुसुखं लोकम्, दुःखालयम्शाश्वत"

गुरुवाणी में भी ऐसा ही उल्लेख है–

''जो दीसे सो सगल विनासे, जिउ बादल की छाई।''

इस बालक के भाग्य का कहना ही क्या ? जिसने इस बाल्यावस्था में ही सकल माया का त्याग किया और वैराग्य को धारण किया है श्री गुरुनानक देवजी महाराज फरमाते हैं–.

''जिहि बिखिआ सगली तजी, लीयो भेख बैराग।
कहु नानक सुन रे मना, तिह नर माथै भागु।।''

अतः यह बालक निरंतर इस सोच में रहता, कि अखण्ड–सुख, अखण्ड शांति आखिर कैसे प्राप्त हो ?

रामायण ने इस दुविधा का समाधान इस प्रकार सुझाया है–

श्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाहीं,
रघुपति भगति बिना सुख नाहीं।

अर्थात– श्रुति, पुराण और अन्य सब ग्रंथ यही कहते हैं, कि श्री राम जी की भक्ति के बिना सच्चा सुख मिलने का नहीं है।

किंतु **भक्ति** अर्थात् जो इतनी दिव्य युक्ति है। जिसके पाने से वह अभीष्ट फल प्राप्त होगा, जिसके लिये मैंने जन्म–जन्म अथक प्रयास किये हैं, ऐसी पावन भक्ति का सुगम एवं सुनिश्चित मार्ग किससे जानूँ ? क्यों न किसी योग्य सज्जन से, हितैषी से इस मार्ग को जानूँ ? क्यों न इस मार्ग में पड़ने वाली अनेक दुविधाओं का हल किसी योग्य मीत से पूछूं? तथा उनका समाधान कराऊँ और राम–नाम अमृत पाऊँ।

''हऊं ढूंडे दी जग सबाया, जन नानक विरले केई।''

किंतु ऐसा योग्य सज्जन, हितैषी, सयाना कौन हो सकता है, जो इस दुविधा को मिटावे, समझाये, संतोष और पूर्ण भरोसा दिलावे? वह स्वयं भी तो ऐसा हो, जिसने **पूर्ण विश्राम** पाया हो, दुःख मिटाया हो, पूर्ण–शांति और विराम पाया हो। जो इन कर्तव्य–कर्मों से उपराम हो चुका हो। निःसंदेह ऐसा कोई गुणी–ज्ञानी मिले, सज्जन–मीत मिले, संत साजन मिले। जिनके दर्शन से, मिलन से, आश्रय एवं सतसंग से इस मन की खोई शांति पाऊँ, दुःख मिटाऊँ, जन्म–जन्मान्तरों की थकान मिटाकर अखण्ड विश्राम पाऊँ।

किन विधि मिलै गुसाई, गुसाई, मेरे राम राइ।
कोई ऐसा संत सहज सुखदाता, मोहि मारगु देइ बताइ।।

अर्थात वे यह जन्म प्रभु को समर्पित करने हेतु कृत संकल्प थे। संत रविदासजी ने भी ऐसा ही संकल्प लेते हुए कहा–

बहुत जनम बिछड़े थे माधउ ! इह जनम तुम्हारे लेखे।
कह 'रविदास' आस लग जीवउ, चिर भया दर्शन देखे।।

भला जिसका मन ऐसे ख्यालों में, ख्वाबों और खोजों में लगा हो, उसे संसार की अक्षरी विद्या कहाँ तक रुचिकर लगेगी? जिसे उसने अनेक जन्मों तक बार–बार सीखा–पढ़ा, किंतु जिस विद्या ने कभी उसे पूर्णता तक नहीं पहुँचाया, हाँ व्यवहार कुशलता और आजीविका उपार्जन तक उसे अवश्य सीमित रखा। ऐसे दरवेशों, फकीरों, आशिकों को तो उस विद्या को, इल्म को सीखने की लगन–अगन लगी रहती है, जो मन को, अहम् को मिटाना सिखाये, आत्मदर्शन कराये, ससीम से असीम बनावे। फकीरी विद्या तो वजूद मिटाने की विद्या है।

''सिखु रम्ज वज्द विञावण दी।
नाहे हाजत पढ़ण–पढ़ावण
अखराँ दे विच जेकोई दी अड़िआ।।
इश्क दी चाढ़ी मूर न चढ़िया।।
इस बाती दा इलम जो पढ़िआ।
मोज उन्हाँ सिर सावण दी।।''

श्री सामी साहिब ने भी फरमाया है–

''पढ़ियो जहिं पूरो, गुरगमु अखरु प्रेम जो।
मिटयो तहिजे मन माँ, अविद्या अन्धेरों।।
'सामी' सो सूरो, जीते वेठो जग खे।

प्रायः ऐसी विचारधारा रखने वाले भक्तों, योगियों, फकीरों को व्यवहार में प्रयुक्त होने वाली विद्या अन्दर ही से प्रकट होती है। जो कई बार अक्षरी–विद्या प्राप्त प्रवीण पंडितों से भी अधिक गहरी पैठ करने वाली रहती है। भारतवर्ष में ऐसे कई संत–महापुरुष हुए हैं, जिन्हें जगत की अक्षरी विद्या सीखे बिना ही, अपने भीतर से ऐसी ज्ञान राशि प्रस्फुटित हुई है, जिसने महान् पाण्डित्य को भी मात कर दिया है।

ψΨΨΨψ

अध्याय–2

संत एवं सद्‌गुरु

ईश्वर अनन्त है। उसके नाम–रूप–लीला –गुण–धाम एवं निर्गुण स्वरूप का वेद–पुराण, श्रुति, शास्त्र एवं ऋषि–मुनि वर्णन करते–करते थक गये, किन्तु पार न पा सके और अंततः नेति–नेति करते हुए शांत हो गये।

सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा, जा कहुँ कोउ नहीं जाना।

उसी सत्–चित्–आनन्द–स्वरूप, अनादि, अजन्मा, नित्य, निःसंग, निर्गुण, अपरिच्छिन्न, त्रिकाल अबाध्य प्रभु को, जो अनन्त ऐश्वर्य का स्वामी हैं, अपनी छोटी–सी पंच भौतिक देह में सदैव विराजमान रखने वाले, इस संसार में कोई हैं, तो वे हैं मात्र **संत**। कितनी विचित्र बात है, कि अनन्त, व्यापक, अपरिमित और समुद्र से विशाल, षड्–ऐश्वर्य युक्त प्रभु इस छोटी–सी देह में समाये हों। किंतु मन–वाणी से अगम्य इस दिव्य वास्तविकता को केवल अनुभव द्वारा ही जाना जा सकता है।

''बूँद समायी सागर में, यह जाने सब कोय।
सागर समाया बूँद में, यह जाने विरला कोय।।''

वैसे सारा संसार भगवान् के एक अंश में स्थित है, किंतु भक्तों की तो बात ही कुछ निराली है। वे तो ऐसे भगवान् को भी अपने हृदय में लिये घूमते हैं। ऐसे सद्‌गुरु–संत अनन्त ईश्वर में नित्य–निरंतर निमग्न रहकर अपना **आपा** पूर्ण रूप से उसमें विलीन करके, उसी में एक हुए हैं, तद्रूप हुए हैं, वे ही हुए हैं। ऐसे महान् पद को प्राप्त करने के कारण इन सत्पुरुषों में भी प्रभु की सब विभूतियाँ ज्यों–की–त्यों प्रकट हुई हैं। यही कारण है, कि प्रभु की भाँति संतों की महिमा का वर्णन करने में और अन्त

पाने में वेद, पुराण, श्रुति आदि सब सद्शास्त्र असमर्थ सिद्ध हुए हैं और बेअन्त, अनन्त, अन्तहीन कहते हुए अन्ततः शांत हुए हैं–

"जानेसु संत अनन्त समाना।"

अर्थात–संतों को ईश्वर के समान जानना चाहिए।

श्रीगुरु अर्जुन देवजी महाराज जी ने इस सच्चाई को इन शब्दों में स्पष्ट किया है–

''साध की महिमा बेद न जानिह, जेता सुनहि तेता बखिआनहि।
साध की उपमा तिहु गुण ते दूरि, साध की उपमा रही भरपूरि।
साध की सोभा का नाहीं अंत, साध की सोभा सदा बेअन्त।
साध की सोभा ऊच ते ऊची, साध की सोभा मूच ते मूची।
साध की साभा साध बनि आई, नानक साथ प्रभ भेदु न भाई।

प्रभु में निमग्न ऐसे संतजन भी प्रभु की भाँति दया, क्षमा, शांति, समता, सरलता, उदारता, वात्सल्य, पवित्रता, माधुर्य और पूर्णानन्द की प्रत्यक्ष मूर्ति होते हैं। ईश्वर तो कभी–कभार अवतार लेकर आते हैं और दुष्टों को मारकर भक्तों की रक्षा करते हैं, किंतु संतजन तो इतने महान हैं, कि वे दुष्टों को नहीं मारते, अपितु सुधारते–सँवारते हैं और उन्हें वाल्मीकि–सा दिव्य बनाते हैं।

''बलिहारी गुरु आपणे दिउहाड़ी सदवार।
जिनि मानुष से देवते किये, करत न लागी बार।।''

ऐसे ही संतजनों को वेदशास्त्रों ने सद्गुरु की उपमा देकर अलंकृत किया है–

'सत् पुरख जिन जानिया, सत्गुरु तिसका नाउं।'

सद्गुरु ! आह ! विश्व के शब्द–कोष में ऐसा अन्य कोई शब्द नहीं है, जो इतना अर्थपूर्ण हो। जिस शब्द का अर्थ चिंतन

करते–करते महान से महान आत्माएँ भी शनैः–शनैः भाव–विभोर होते हुए अन्ततः एक अजीब आनन्दपूर्ण मौन को प्राप्त होते हैं, और इन श्री चरणों में पूर्ण शरणागत हो, अनिर्वचनीय समाधि सुख का आस्वादन करने लगते हैं। ऐसे में भला यह अकिंचन दास, **सद्गुरु** के प्रति क्या जान सके, कह सके, लिख सके?

''कवन वडाई कहि सकउं बेअन्त गुनीता।
करि कृपा मोहि नामु देउ, नानक दर सरीता।।''

सद्गुरु शब्द से सम्बोधित ऐसे परम पुरुष के दर्शन, मिलन, शरण एवं उनकी सेवा–सत्संग अहो सौभाग्यशाली एवं अति दुर्लभ हैं और संतों से प्राप्त होने वाले परम लाभ का तो मूल्यांकन संसार का कोई प्राणी कर ही नहीं सकता है।

शास्त्रों ने वचनों को तीन विभागों में विभाजित किया है– प्रथम रोचक, द्वितीय–भयानक, तृतीय–यथार्थ। यहाँ यह दास एक बात विनय–पूर्वक कहना चाहता है, कि ईश्वर एवं संत–सद्गुरु के विषय में यहाँ जो कुछ भी लिखा गया है, अथवा लिखा जा रहा है, वे सब यथार्थ वचन हैं, इनमें कहीं भी रोचक अथवा भयानक वचनों का समावेश नहीं है।

अस्तु ! तो हम चर्चा कर रहे थे, सदगुरु महिमा की। सद्गुरु जीव और ईश्वर के बीच की वह कड़ी है, जो एक ओर तो प्रभु परमात्मा से प्रत्यक्ष अभिन्न रूप से जुड़े रहते हैं। दूसरी ओर सब जीवमात्र का नित्–निरंतर, प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष, कल्याण–साधन करते रहते हैं। कल्याण–साधन ही क्यों, वे तो सच्चे साधकों, जिज्ञासुओं, मुमुक्षओं को कृपा कर ऐसा मार्ग दर्शा सकते हैं, जिस मार्ग पर चलकर जीव सहज ही इस भयावह संसार सागर को पार कर परमपद का अधिकारी हो जाता है। और तो और, सद्गुरु चाहे तो इस जीव को, जो जन्म–जन्मान्तरों से ईश्वर–मिलन हेतु लग्नशील है, क्षण–मात्र में ईश्वर–दर्शन,

आत्मदर्शन, आत्म–साक्षात्कार करा सकता है। क्या लाखों वर्षों के अंधेरे स्थान में दीप जलाने पर उजाला होने में कोई विलम्ब होता है ? उसी प्रकार जीव जब सद्गुरु की शरण में जाता है, तब उसके कोटि–कोटि जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं और वह परमात्मा के समीप पहुँच जाता है।

''सनमुख होई जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अध नासहिं तबहीं।।''

सद्गुरु अपनी महती कृपा कर ऐसी शक्ति–युक्ति शिष्य के अन्दर पैदा करने में समर्थ होते हैं या पैदा कर देते हैं। हाँ, इतना अवश्य है, कि ऐसी महान कृपा पाने के लिए शिष्य को भी उतना ही श्रद्धावान–निष्ठावान् होना आवश्यक है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं (गीता ४/३६)

अर्थात् श्रद्धावान् को ही ज्ञान प्राप्त होता है। ऐसी ही महानताओं के कारण सद्गुरु एवं संतों को प्रभु से भी अधिक बड़ा माना है–

''मोरे मन प्रभु अस विश्वासा,
राम ते अधिक राम करदासा।''

सिंध के महान् संत सतरामदास साहिब जी एवं अमर शहीद संत कँवरराम साहिब जी भी ऐसे ही दिव्य एवं समर्थ सद्गुरु थे, और श्री आसूदाराम साहिब जी भी ऐसे ही निष्ठावान, योग्य एवं समर्पित शिष्य थे, जिन्होंने ऐसे महान् गुरुओं का सतत् सानिध्य पाकर परम लाभ पाया।

''बन्देऊ गुरु पद कञ्ज, कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुञ्ज, जासु वचन रविकर निकर।।''

अर्थात्– मैं श्री गुरुदेव के चरण कमलों की वन्दना करता हूँ, जो दया के सागर और मनुष्य रूप में साक्षात् श्री हरि ही हैं। जिनकी वाणी सदा अज्ञान रूपी घोर अंधकार को नाश करने वाली सूर्य की किरणें हैं।

ψΨΨΨψ

अध्याय–3

सद्‌गुरू–मिलन

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है, बालक आसूदाराम साहिब के पिता श्री लुधड़ोमल अपने बालक की संसार के प्रति इतनी तीव्र उदासीनता देखकर काफी चिंतित थे, किंतु एक सर्व-साधारण गृहस्थ पिता अपने बालक की इस उदासीनता के कारण को समझ नहीं पा रहे थे। एक दिन उन्हें पता चला, कि रहिड़की साहिब के संत सच्चे साईं सतरामदास साहिब भगत करने हेतु हाजीखान गाँव में आ रहे हैं। उन दिनों संतों की भगत के कार्यक्रमों को विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त थी, इसलिए अधिकांश लोग, अपने आस-पास के गाँवों में आयोजित ऐसे भगत के कार्यक्रमों में अवश्य शामिल हुआ करते थे।

हाजीखान गाँव, जो उनके गाँव जतोइन से एक मील दूर है। आज यहाँ सिंध के महान् साहूकार ने डेरा डाला है, ऐसा साहूकार, जो उन सौदागरों से सर्वथा भिन्न है, जो क्रय वस्तु का दाम जाँच–परख के बाद भी बड़ी कृपणता से देते हैं, और व्यक्ति की दयनीयता, मजबूरी, जरूरत का पूरा फायदा मात्र स्वयं के लाभ के रूप में वसूलते हैं। ऐसों में मात्र सौदागिरी प्रधान रहती है, उनमें कहीं भी साहूकारी नहीं दिख पड़ती है। ऐसों के विपरीत आज यहाँ साहूकारों के साहूकार ने डेरा डाला है, जो सौदा करने आये हुए व्यक्ति की वस्तु का मूल्य मात्र वस्तु को परख कर नहीं, किंतु याचक की इच्छा–आशा से भी इतना अधिक देते हैं, कि उसे हमेशा–हमेशा के लिए अयाचक ही बना देते हैं। यह ऐसा फराक–दिल शहँशाह है, जो बड़ा विचित्र सौदा करता है। दुःख लेकर सुख देता है, अशांति लेकर शांति देता है, रोग लेकर आरोग्य देता है, चिंता लेकर चिंतन देता है और

दरिद्रता लेकर मालामाल कर देता है। हाँ, यह शहँशाह तो इससे भी अधिक कुछ देता है। इससे क्या माँगेंगे आप ? यह तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जैसी त्याग की चीजें लेकर पूर्ण उपरामता देता है, मृत्यु लेकर अमरता देता है, नश्वरता लेकर शाश्वत्तता देता है। और तो और, ओह ! यह तो स्वयं के रंग में रंगकर स्वयं–सा शहँशाह बना देता है। वाह ! साहूकार तेरी साहूकारी !! हे स्वामी ! मेरी चर्म–जिह्वाँ आपके बेशुमार गुणों का कहाँ तक वर्णन करे –

''जिहवा एक कवन गुन कहिए,
बेशुमार, बेअन्त स्वामी, तेरो अन्तु न किनहु लहिए।''

श्री सामी साहिब ऐसे सौदागरों का वर्णन करते हुए कहते हैं, कि ऐसे सच्चे सौदागर, जिन्हें सद्‌गुरु की अपार कृपा से शुद्ध एवं खरा सौदा करने की पाक, पावन दृष्टि मिली है, जो मैं–मेरा को मिटाकर सदैव स्व–स्वरूप में स्थित रहते हैं। वे सच्चे सौदागर मात्र ''सार–वस्तु'' का ही सौदा करते हैं। ऐसे सौदागर भले ही संसार, अर्थात् माया के बीच रहते हों, किंतु आकाश की भाँति सदैव निर्लिप्त रहते हैं–

''सच्चा सौदागर, सौदो कनि सार जो।
जिनिखे डिनी सत्गुरुअ पूर्ण पाक नजर।।
'सामी' मिलिया स्वरूप सां, मेटे डुख डमर।
रहनि मंझि सबुर, सदा अलेपु आकाश ज्याँ।।''

आज विधी के विधान से अनभिज्ञ पिता लुधड़ोमल जी अपने प्राण–प्यारे 5 पुत्रों को, जिनमें आसूदाराम जी भी शामिल हैं, अपने साथ हाजीखान गाँव में लाये हैं। संत सांई सतरामदास साहिब जी का हाजीखान गाँव भजन करने आना, 'हाजीखान' गाँव की आज की रात्रि इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में अंकित हो गई है। आज यहाँ सिंध के महान संत शिरोमणि श्री सतरामदास

साहिब जी प्रभु परमात्मा की स्तुति अपनी अलौकिक, मधुरवाणी में करने जा रहे हैं। ऊपर निर्मल आकाश चन्द्रमा की उज्जवल चाँदनी और झिलमिल–झिलमिल तारों से सुशोभित हो रहा है। पास ही कल–कल करते बह रहे स्रोत में हंस विहार कर रहे हैं। भजनस्थल को घेरे घने वनों के वृक्ष फलों और फूलों से सुन्दरता और सम्पन्नता का इजहार कर रहे हैं। शीतल, सुगंधित, मन्द पवन बह रही है। वृक्षों पर बैठे चकवी, चकोर पपीहा, तोता, मैना, कोयल आपस में बतिया रहे हैं। एक कोयल दूसरी कोयल से कह रही है, *''सखी ! जल्दी चल, आज यहाँ सुरों के सम्राट आये है।''* दूसरी कोयल कहती है, *''अरी सखी ! हम तो स्वयं मधुर–कंठी हैं, हमें क्या आवश्यकता है चलने की?''* पहली कहती है, *''सखी ! हम स्वयं मधुर–कंठी है, इसीलिए चलने को कह रही हूँ, कि चलकर सुरों के सम्राट से गायन के कुछ* ***गुर*** *सीख आएँ।''* सरोवर में हंस परस्पर कह रहे हैं, *''शीघ्र चलो ! आज हमारा अहोभाग्य उदय हुआ है, आज हमारे यहाँ परमहंस आये है।''* भंवरे अपना मधुर गुंजन बन्द कर शांत भाव से यत्र–तत्र डेरा डाले हुए हैं, देवतागण इस दिव्य पुरुष द्वारा प्रभु का यशोगान सुनने के लिए आकाश में एकत्रित हुए हैं। इधर दूर–दूर के गाँवों तक के लोग दैव दुर्लभ सत्संग–श्रवण के अवसर का परम लाभ लेने के लिये इकट्ठे हुए हैं, जिनमें कई त्यागी, तपस्वी, स्वाध्यायी एवं संतजन भी हैं। आज हाजीखान की भूमि वृन्दावन के समकक्ष बन गई हैं, जहाँ कृष्ण–स्वरूप संत सतरामदास साहिब जी पधारे हुए हैं, जिनके दर्शन पाकर आज सब धन्य हुए हैं।

''धन्य भूमि वन पंथ पहारा,
जहँ जहँ नाथ पाउँ तुम धारा।
धन्य विहंग मृग कानन चारी,
सफल जन्म भए तुम्हहि निहारी।''

हे स्वामी ! आज पृथ्वी, वन, मार्ग, पहाड़ सब धन्य हुए हैं, जहाँ–जहाँ आपने अपने पावन पग धरे हैं, वे पक्षी, गाँववासी आदि सब धन्य हुए हैं। आज उनका जन्म आपके दर्शनों से सफल हुआ है।

जिस प्रकार श्याम–सुन्दर से आकृष्ट होकर अनेक गोप–गोपियाँ, गाय–बछड़े, स्त्री–पुरुष उन्हें घेर लेते थे, उसी भाँति महापरोपकारी संत सतरामदास साहिब जी, मुख पर करोड़ों कामदेवों की शोभा लिये, अपार जन समुदाय के बीच पूर्ण निश्चल भाव से आँखे मूंदे अपने पवित्र मुख से ईश्वर का मधुर आलाप गान कर रहे हैं। भुजाएँ फैली हुई, शरीर एकदम निश्चल, कहीं कोई तनाव नहीं। उनके श्री मुख से ईश्वरीय आलाप मानो नदी में जल की भाँति स्वतः प्रवाहित हो रहा हो, जो सीधे अंतःकरण की उन गहराइयों से निकल रहा है, जहाँ आत्मा से परावाणी जन्म लेती हैं, स्फुरित होती है। दृष्टि एकदम अंतर्मुखी। ऐसी दिव्य अवस्था में शरीर को सम्भाले रखने में मात्र प्रकृति का स्वाभाविक चेतन–तंत्र कार्य कर रहा है। वृत्ति एकदम ब्रह्ममयी। ऐसी अलौकिक दिव्य स्थिति का वर्णन वाणी द्वारा करना कदापि संभव नहीं है, फिर भी इसे वर्णन करने का प्रयास इस प्रकार किया गया है,

गुरुमुख अन्तर सहज है, मन चढ़िआ दसवें आकाश !
तिथे ऊंञ न बुख है, हर अमृत नाम सुख रास।
नानक दुःख सुख विआपत नहीं, जिते आत्मराम प्रगास।

यह दसवें द्वार में पहुँचने की स्थिति है, जहाँ जिस्म तो मौजूद रहता है, किंतु जीव–ब्रह्म का कारण रूप **मन**, अपने मूल स्रोत्र **आत्मा** में पूर्ण रूप से लय होकर, अखण्ड चैतन्य का रूप ग्रहण कर लेता है। **कैवल्य** की इस स्थिति के द्वारा जहाँ अंशा–अंशी भाव भी समाप्त हो जाता है, वहाँ मात्र **पूर्ण चैतन्य** विराजमान रहता है। अस्तु ! ऐसी अवस्था में श्री स्वामीजी ऐसे

सुशोभित हो रहे हैं, मानो भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सत्–चित्–आनन्द एक रूप हो, साक्षात् शरीर धारण किये खड़ा है और जिन्हें इस दिव्य रूप में देखकर सिद्ध–साधक भी पूर्ण अनुराग को प्राप्त होते हैं।

'निरखि सिद्ध साधक अनुरागे।'

इधर ऐसी अद्वितीय ब्रह्ममयी अवस्था से संत सतरामदास साहिब जी जब भजन समाप्त कर संगत को आशीष देने हेतु मंच पर विराजमान हुए, तब भाई लुधड़ोमल जी अपने पाँचों पुत्रों के साथ संत-दर्शन की कतार में खड़े हो गए। बहुत देर बाद सच्चे साईं के दर्शन हेतु जब उनका नंबर आया, तब पिता के साथ ही पाँचों पुत्रों ने भी बारी-बारी से सच्चे साईं सतरामदास साहिब की चरण-वंदना की। इधर बालक आसूदाराम ने तो संतों को भूमिष्ठ होकर साष्टांग वन्दन किया। अति प्रेम विव्हल दशा के कारण मुख से वाणी नहीं निकल सकी। अतः उन्होंने मन ही मन उनसे इस वर की याचना की।

मन ही मन मांगहि वर ऐहू,
सीय राम पद् पदम् सनेहू
प्रेम मगन मुख वचन न आवा,
पुनि–पुनि पद सरोज सिर नावा।

हे कृपानिधान स्वामी ! आप मुझे बस यही वर दें, कि मेरा मन भी श्री सीता–राम जी के चरण–कमलों के पावन प्रेम में रम जाये।

यह वर माँगउ कृपा निकेता,
बसहुँ हृदय श्री अनुज समेता।।
अवरिल भक्ति, विरति सतसंगा,
चरण सरोरूह प्रीति अभंगा।।

हे कृपा निधान ! मैं आपसे यही वरदान माँगता हूँ कि आप मेरे हृदय में निवास करें और मुझे अपनी अटल भक्ति, वैराग्य, सत्संग तथा अपने चरण–कमलों में अचल प्रेम प्रदान करें।

संत सतरामदास साहिब जी, जिनके खुमारी भरे नेत्रों से दिव्य प्रकाश की वे किरणें निकल रही थीं, जिनके आगे सूर्य–चन्द्र की किरणें भी फीकी जान पड़ती थीं, उनके श्रीमुख के दर्शन से संसार का समस्त आकर्षण फीका प्रतीत होने लगा।

खणीं नेण खुमार माँ, जो नाज कयाऊँ नजर।
सूरज शाखों झिकियूँ, कुमाणीं कँवल।।
तारा–कतियूँ ताइब थिया, डिसंदे दिलबर।
झको थियो जौहर, जानब जे जमाल सां।।
(श्री शाह साहिब)

अर्थात्– श्री शाह अब्दुल लतीफ साहिब जी ऐसी दिव्य आभा का वर्णन करते हुए फरमाते हैं, कि ईश्वरीय दिव्यता धारण कर संतों ने जब अलौकिक दृष्टि फैलाई, तब सूरज–चन्द्र एवं तारों की किरणें भी फीकी जान पड़ने लगीं। उनकी इस अलौकिकता के आगे इस संसार की चमक–दमक तुच्छ लगने लगी।

इस बीच में जब श्री स्वामी जी ने अपनी पवित्र दृष्टि परम निर्मल भाव से उठाकर बालक आसूदाराम जी को निहारा, तो ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उनके नेत्रों से कृपा की धारा निकल कर बालक के अंग–प्रत्यंग को भक्ति, ज्ञान, वैराग्य के रस से सींच रही हों और उनमें ऐसे बीज बो दिये हों, जो समय आने पर ऐसे फलीभूत हुए, कि उससे उनका स्वयं का जीवन तो धन्य हुआ ही, साथ ही नित्य निरन्तर अनेकों का जीवन धन्य करने में वे सहायक सिद्ध बने। सच्चे साईं ने वंदन करने के लिए झुके इस बालक आसूदाराम को प्रेम-पूर्वक उठाकर, बाँहों में भरकर,

अपने साथ सटा लिया। संत श्री का यह व्यवहार न केवल पिता लुधड़ोमल जी के लिए, बल्कि सच्चे साईं के सेवादारियों तथा संगत के लिए भी अचरज का विषय था। साधारणतः सच्चे साईं ऐसे चरण-वंदना करनेवालों के सिर पर आशीष का हाथ फेर दें, यही बहुत बड़ी बात थी। इसलिए सभी को आश्चर्य होना स्वाभाविक ही था। आज बालक के सौभाग्य का क्या कहना ? आज तो उसके जन्म–जन्मांतरों के पुण्य खुले हैं।

''पुण्य पुंज बिन मिलहि न संता।''

आज अनेक–अनेक जन्मों के बाद उसे वह मंजिल, वह मुकाम, वह लाभ, वह सुफल मिला, जो भक्त ध्रूव को नारद के मिलने से, राजा परीक्षित को श्री शुकदेव जी के मिलने से, राजा जनक जी को मुनि अष्टावक्र जी के मिलने से, श्री कबीरदास जी को संत रामानन्द के मिलने से प्राप्त हुआ था।

''जिन हरिजन सत्गुरू संगति पाई,
तिन धुरि मसतकि लिखिआ लिखासि
धनु–धंनु सत संगति, जितु हरि रसु पाइआ,
मिलिजन नानक नाम परगासि।। (1)।।
मेरे माधउ जी ! सतसंगति मिले सु तरिआ।
गुरु प्रसादि परमपदु पाइआ ! सूके कासट हरिआ।।

किसी कवि ने बड़ा सुन्दर कहा है–

''तुहिंजा कर्म खुलिया थी, पूरबले जनम जा।
दाणा अघाणा, पिछले कर्म जा।
गुरु घर में आया, गुरुअजा ओ प्यारा।
भागनि वारा, ओ नसीबनि वारा।।

बालक आसूदाराम को अपनी भुजाओं में समेटे सच्चे साईं सतरामदास ने आश्चर्य में डूबे पिता श्री लुधड़ोमल जी को देखा

और बोले, *"इस बालक का जन्म आपके यहाँ अवश्य हुआ है, किंतु यह बालक तो हमारा है। यह कोई साधारण बालक नहीं। इसकी मंज़िल कुछ और है, जिसकी राह रहिड़की साहिब से होकर गुज़रती है। हज़ारों नर-नारियाँ अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए, उसी मंज़िल पर इसकी प्रतीक्षा में पलक-पावड़े बिछाकर बैठी हैं। अभी यह बालक है। इसे शिक्षा-दीक्षा, सही पालन-पोषण एवं संस्कार देने की आवश्यकता है। आज से यह बालक आपके पास हमारी अमानत है, इसकी सही तरीक़े से परवरिश कीजिएगा। जब यह पानी के मटके उठाने के काबिल बन जाए, तब हमारी अमानत हमें सौंप दीजिएगा।"*

सच्चे साईं की बात सुनकर पिता अवाक-से रह गए, उनके मुख से कोई बोल न फूटा। बालक आसूदाराम तो कुछ कहने की हालत में ही न था, उसकी आँखों से प्रेमाश्रू छलकने रहे थे। सद्गुरु संत सतरामदास का स्पर्श उसे यूँ लगा, जैसे मरुस्थल की तेज़ गर्मी में झुलसते तन को शीतल जल की फुहार मिल गई हो, जिसके कारण बालक आसूदाराम के तन में बिजली की तरह सिहरन-सी दौड़ गई और वह काँप उठा। पिता-पुत्र की हालत देखकर साईं सतरामदास साहिब ने मुस्कुराकर कहा, *"चिंता मत कीजिए..। ईश्वर ने कुछ भला ही सोच रखा है। धन्य हैं आप, जिसके घर में ऐसी संत-प्रवृत्ति वाले बालक ने जन्म लिया है। आपके इस बालक का नाम क्या है?"*

पिता लुधड़ोमल जी ने हड़बड़ाकर जवाब दिया, *"अ.. अआ.. आसूदा..।"* संत जी के मुख से निकला, *"वाह..। आसूदा यानी संपन्न, इतनी आध्यात्मिक संपदा के साथ जन्म लेनेवाले बालक का नाम इससे बेहतर तो हो ही नहीं सकता। कहो आसूदा, आओगे न हमारे पास..?"* बालक आसूदाराम ने पिता लुधड़ोमल जी की तरफ देखा और सँकुचाते हुए सहमति में सिर हिला दिया। पिता लुधड़ोमल के लिए यह सारा घटनाक्रम अनपेक्षित था। बरसों से वे अपने बालक की उदासीनता को देखकर चिंतित रहे और

आज अचानक ही सारी चिंता का बोझ उनके सिर से हट गया था, इसलिए उनकी ज़ुबान को तो जैसे ताला लग गया था। संत जी ने बड़े प्रेम से उनके कंधों पर हाथ रखकर सांत्वना देते हुए कहा, *''प्यारे, मेरी संपदा, मेरा आसूदा अब आपके पास है, इसका कुछ साल तक ख़याल रखिएगा। ठीक है ना..?''*

पिता के मन में नाना प्रकार के विचार उठ रहे हैं। पुत्र की मनोदशा का वर्णन तो किया ही नहीं जा सकता है। संतों के दर्शन करते ही, उसके नेत्र शीतल, शरीर पुलकित हो गया है। मन दीन भाव से संतों की प्रार्थना करने में लीन है।

''दीन दरद दुःख भंजना, घटि घटि नाथ अनाथ।
शरणि तुम्हारी आइआ, नानक के प्रभु साथ।।
"फिरत फिरत प्रभु आइआ, परिआ तउ सरनाइ।
नानक को प्रभु बेनती, अपनी भक्ति लाइ।।''

इस प्रकार एक पूर्ण जोगी (संत), बालक पर ईश्वरभक्ति का जादू–सा करके अपने गाँव रहिड़की लौट गए और इधर भाई लुधड़ोमल जी बालक को प्रसन्न मन से लेकर अपने घर की ओर चल पड़े।

श्री सामी साहिब जी ने बालक आसूदाराम साहिब जी जैसे सौदागर के लिए अपने श्लोक में कहा है–

सोई सौदागुरु, जो खेप खटी घरि आयो।
वरतो जहिं वेसाह सां, दिल ड॒ई दिलबर।।
कहिंजो करे कीनकी, निश्चय निरादर।
जाणे सभु गुजर, स्वप्न जो 'सामी' चए।।

अर्थात्– सच्चा सौदागर वही है, जो बाजी जीतकर घर लौटता है। जिसने दृढ़ विश्वास के बल पर अपना दिल दिलदार को देकर दिलदार को अपना बना लिया। ऐसा आशिक किसी की स्तुति–निंदा से निर्लिप्त रह कर, संसार को स्वप्नवत् जानकर, संसार में विचरण करता है। ψΨΨΨψ

अध्याय–4

विरह की तीव्र वेदना

बालक आसूदाराम साहिब जी, जिनकी उम्र उस समय करीब 9–10 वर्ष की थी, अपने प्राणनाथ, अपने स्वामी, अपने सर्वस्व सद्गुरू सांई सतरामदास साहिब जी के प्रथम दर्शन पाकर निहाल हो गये, धन्य हो गये, उनके श्री चरणों में समर्पित हो गये। संत सांई सतरामदास साहिब जी तो दो घड़ी बालक के सम्मुख आकर उसे अपना बनाकर अपने गाँव चले गये, किंतु इन दो घड़ियों ने बालक पर ऐसा जादू–सा किया, कि बालक की मनःस्थिति ही बदल गई। पूर्व में वह इस दुविधा में, असमंजस में था, कि मिथ्या किंतु खरा सत्य भासने वाले इस संसार–समुद्र से किस प्रकार पार उतरा जाय। वह समुद्र, जिसकी असंख्य लहरें इस जीव को, इस मन को प्रतिक्षण ऐसी उछाल देकर फेंकती हैं, कि वह ऐसे भँवरों में जा फसता है, जहाँ दुःसह स्थिति में डूबता–उतराता अन्ततः मृत्यु को प्राप्त होता है। ऐसी भयावह स्थिति में एक मात्र ईश्वर, सद्गुरु ही मददगार सिद्ध हो सकते हैं। किंतु अब बालक आसूदाराम सद्गुरु के पावन दर्शन पाकर ऐसी दुविधाजनक स्थिति से बड़ी सुगमता से निकल आया। उसे एक सुनिश्चित मार्ग मिल गया है, जिस मार्ग पर निष्ठा एवं लगन पूर्वक चलकर, वह निश्चय ही इस 'मिथ्या जगत' का त्याग कर 'सत्य ब्रह्म' का साक्षात्कार कर सकता है। अस्तु, संत श्री के अपने गाँव चले जाने के बाद, पीछे बालक की मनःस्थिति अजीबो–गरीब हो गयी। पहले–पहल तो मुख पर खामोशी छा गयी, शरीर दिनों–दिन दुबला होता गया। किंतु हाँ, मुख की कांति और तेज बढ़ता गया।

"देह दिनहुँ दिन दूबरि होई,
घटइ न तेज–बल मुख छबि सोई।"

शारीरिक क्रियाएँ शिथिल हो गईं। प्रातः से सायंकाल तक मन विरह की तीव्र वेदना विचारों में डूबा रहता, कि सद्‌गुरु के ऐसे दैदीप्यमान श्रीमुख के दर्शन फिर कब होंगे? कब उनके श्री चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त होगा? वह शुभ दिन कब आयेगा, जब मैं सद्‌गुरु–दरबार में पहुँचकर उनके पावन दर्शन कर पाऊँगा? इन विचारों में तल्लीन बालक आसूदाराम को रातों में नींद नहीं आती, दिन काटे नहीं कटते। प्रतिपल दूभर हो गया।

"मोहि रैणि न विहावै, नींद न आवै।
बिनु देखे गुरु दरबारे जीउ।"

दिनों–दिन विरह–वेदना तीव्र होती गई, मन का असर तन पर होने लगा। जागते भी वे ही विचार, स्वप्न में भी वही ख्याल। अब न पहले जैसी भूख लगती, न प्यास। केवल रहती स्वामी मिलन की चाह। अपनी चौथी कक्षा तक की शिक्षा पूर्ण करने के बाद आसूदाराम की पढ़ने–लिखने में रुची पूरी तरह ख़त्म हो गई। विरह की ऐसी दशा में पढ़ने–लिखने की सुध भला कहाँ ? वह सुध तो महबूब से मिलने की खातिर ही खो गई।

"पहिंजे मुहिब मिलण जे काणि जेॾियूँ।
ॿ्या सभु कम वया थमि विसिरी।।"

अर्थात् – महबूब से मिलने के लिये, दूसरे सब काम–काज बिसर गये हैं। बालक पर संतों की एक ही नजर से मानो अनुराग का पक्का रंग चढ़ गया था और वैसे भी स्वच्छ, निर्मल वस्तु पर रंग शीघ्र और पक्का चढ़ता है और निखरता भी खूब है, बनिस्पत

नाना रंगों में रंगी हुई वस्तु के। यह तो ईश्वर की बालक आसूदाराम साहिब जी पर परम कृपा थी, कि उसे बाल्यावस्था में ही ऐसे पूर्ण सच्चे संत मिल गये।

बिनु हरि कृपा मिलहिं न संता।

अन्यथा अनेकों का जीवन तो सद्‌गुरु खोजने–मिलने में ही गुजर जाता है, और अनेकों का जीवन तो इस परम लाभ की जानकारी के अभाव में ही बीत जाता है।

अधीरता, विकलता के ऐसे क्षणों में बालक आसूदाराम साहिबजी ने दो–चार बार पिताश्री से सद्‌गुरु के पास ले जाने के लिए कहा, किंतु पिता ने बात जो टालने के अंदाज़ में कह दिया, कि चलेंगे-चलेंगे। पिता श्री लुधड़ोमल जी तैयार होते भी तो कैसे, अब भी हाजीखान में घटी घटना से वो उबर नहीं पाए थे। उन्हें लगता था, कि जैसे हाजीखान में सच्चे साईं जी से हुई मुलाकात केवल एक स्वप्न मात्र है। कहाँ परमपद पर पहुँचे सच्चे साईं जी और कहाँ अबोध बालक आसूदाराम..? भला हक़ीक़त में भी ऐसा मुमकिन हो सकता है? कुछ तो ऐसा था, जो उन्हें अब भी समझ में नहीं आ रहा था। उनका पुत्र-प्रेम भी उन्हें भटका देता और अभी तो आसूदाराम बालक ही है, उसकी समझ कितनी? वैसे भी सच्चे साईं जी ने बालक के युवा होने की बात कही है, जबकि आसूदाराम तो अभी छोटा है, निर्बल है। जब समय आएगा, तब देखेंगे। यही सोचकर श्री लुधड़ोमल जी उसकी बात को टाल देते थे।

धीरे–धीरे बालक ने अपना व्यवहार बदला। वह अब बाहरी तौर पर सामान्य रूप से सब कामकाज करने लगा। मात्र इस हेतु, कि पिता जी इससे प्रसन्न होकर उसे अपने स्वामी के पास ले जाएं। वैसे उनमें स्वयं तो किसी से मिलने की इच्छा जागती

ही नहीं थी। यदि कोई मिलता, तो बाहरी रूप से सामान्य, किंतु भीतरी रूप से, बिल्कुल निरपेक्ष भाव से, उससे मिलते थे, उनकी नजर तो टिकी थी मात्र स्वामी मिलन पर।

किसी फकीर ने अपनी ऐसी ही मनोदशा का वर्णन करते हुए खुदा से कुछ इस प्रकार कहा है–

''तुझसे बिछुड़ कर न उम्र भर किसी से मिले।
कोई मिला भी, तो बेदिली से मिले।।
खुशी से मिले या नाखुशी से मिले।
तेरा ख्याल रहा, जब भी हम किसी से मिले।।''

वैसे भी प्रेम का यह तकाजा है, कि यदि प्रियतम दो कदम आपकी ओर चलकर आए, तो प्रेयसी का यह फर्ज बनता है, कि वह भी प्रियतम से मिलने हेतु चार कदम बढ़ाए।

"अगियऊँ ईन्दुइ होत, तूँ भी अगभरी थिजांई।"

इसी प्रीति की रीति को बालक आसूदाराम निभा रहे थे। बालक आसूदाराम अब बाल्यावस्था पार कर किशोरावस्था में प्रवेश कर चुके थे। सांसारिक माया अपनी पूर्ण शक्ति के साथ बल–छल से उसे लुभाने की चालें चलने लगीं, किंतु जिसे पहले ही ईश्वरी इश्क चारों ओर से घेर चुका हो, उसे माया भला क्या कर सकेगी? उन्हें तो इस इश्क ने ही अपने महबूब का ऐसा दीवाना बना दिया था, कि वे हर समय खोये–खोये रहते थे, वे हाल–बेहाल थे–

''लगन–लगन सब कोई कहै, लगन कहावै सोइ।
नारायण जेहिं लगन में, तनमन डारै खोय।।
जो सिर काटे हरि मिले, तो हरि लीजै दौड़।
ना जाने या देर में, ग्राहक आवै और।।''

अस्तु ! इस प्रकार विरह का यह समय काटे कटता नहीं था, फिर भी दिन पर दिन, माह और वर्ष बीतते गये। पाश्चात्य संस्कृति में वैज्ञानिकता का विकास हुआ है। पश्चिमी लोग इस तरह की अवस्था में पहुँचे व्यक्ति के लिए किसी मनोवैज्ञानिक से परामर्श लेने की सलाह देते हैं और वहाँ रामकृष्ण परमहंस जैसे संतों को भी मानसिक रोगी कहा जाता है। पश्चिम के हिसाब से सोचें, तो भारत के अनेक साधू-संतों-दरवेशों का, रामकृष्ण परमहंस एवं संत गजानन महाराज को भी, मानसिक रोगी घोषित करके, उनका उपचार किया जाना चाहिए। यह हो भी रहा है, भारत में जिन संत-महात्माओं को हमने अलौकिकता के शिखर पर बिठा के रखा है, पश्चिम में ऐसे अनेक व्यक्तियों पर तब तक उपचार किया जाता है, जब तक वो सामान्य व्यवहार न करने लगें। पश्चिम के मनो-रुग्णालय में भरती आधे से ज़्यादा लोग, सिर्फ़ इसलिए कष्टदायी उपचार से गुज़र रहे हैं, क्योंकि उनकी अलौकिकता को वहाँ मान्यता नहीं है। जबकि भारत में ऐसी अवस्था में रहे लोगों ने ही आगे चलकर परमपद को पाया है और समाज को एक अलौकिक दिशा दी है।

श्री आसूदाराम साहिब जी समय—समय पर पिताजी से सद्‌गुरु के पास जाने की बात कहते रहते। पिता श्री लुधड़ोमल जी तो अभी-भी कश्मकश में उलझे हुए हैं। ऊपर से संयुक्त परिवार में किसी भी सदस्य की राय इस पक्ष में नहीं है, कि आसूदाराम को रहिड़की दरबार भेजकर सच्चे साईं के सुपुर्द किया जाए। माता की ममता और पिता का वात्सल्य उन्हें इज़ाजत नहीं देता, कि अपने अबोध और भोले-भाले मासूम बेटे को अपनी नज़र से दूर रखा जाए। वैसे भी आज्ञा मिले भी तो कैसे, आखिर **हुक्म** तो उधर से ही होना था।

''हुकुमें अन्दर सबको, बाहिर हुकुम न कोय।''

रामायण में श्री रामजी भी श्री भरतजी से यही कहते हैं–

''ईश अधीन जीव गति जानी।''

जीव की गति ईश्वर के अधीन है। शायद परमात्मा उन्हें तीव्र विरहाग्नि में तपाकर खरा सोना बनाना चाहते थे। किसी ने कहा है–

''रंग लाती है हिना, पत्थर पे घिस जाने के बाद।''

परंतु आसूदाराम जी को तो ज़िंदगी की राह का नक़्शा मिल चुका है; नियति निश्चित हो चुकी है। इसलिए वो भी हार मानने को तैयार नहीं। वाह ! इस बालक का दृढ़ निश्चय और अनुराग धन्य है !! वे पूरे धैर्य के साथ उस दिन की राह जोहने लगे, जिस दिन उन्हें अपने पिता से सद्गुरु देव के पास जाने की सहर्ष सहमति मिले।

''सबुर जिनी जो सीख, वार न विंगो तिनिजो।''

अर्थात्– जो सब्र के मार्ग पर चलते हैं, उनका बाल भी बाँका नहीं होता है।

अंततः वह शुभ दिन, शुभ घड़ी आ गई, जब श्री आसूदाराम साहिब जी को उनके पिताजी ने अपने प्राणप्रिय पुत्र की यह मनोदशा एवं मनःइच्छा देखी, तो उन्हें सहर्ष सद्गुरु के दरबार में ले जाने की सहमति मिल गई। मगर यह हुआ किस तरह..? बिल्कुल उसी तरह से, जैसा भगवान महावीर के जीवन में घटित हुआ था।

क्षत्रिय-पुत्र वर्धमान महावीर जब युवा हुए, तो उनके भीतर इस भौतिक संसार के प्रति वीतरागिता का भाव पैदा हुआ और वो

सन्यास की इच्छा लेकर अपनी माता से अनुमति लेने गए। सुनते ही माता ने सीधे इंकार करते हुए कहा, कि जब तक मैं जीवित हूँ, मेरे आगे सन्यास की बात फिर मत करना। महावीर चुप हो गए और समय बीतता गया। आख़िर उनकी माता की मृत्यु का समय भी आ गया। अंतिम क्रिया-कर्म से निपटने के बाद, महावीर न यही अनुमति पिता से माँगी। पिता ने भी वो ही जवाब देकर स्पष्ट इंकार कर दिया। महावीर ने न कुछ कहा और न अपने पिता की आज्ञा का विरोध किया। बस चुप हो गए। फिर जब पिता की मृत्यु हो गई, तो वो यही मंशा लेकर भाई के पास पहुँचे। भाई ने भी वो ही जवाब देकर मना कर दिया।

वर्धमान महावीर ने उनकी आज्ञा को भी शिरोधार्य कर लिया। महावीर अब किसी से कुछ भी नहीं कहते और अपने आप में खोए रहते। वक़्त अपनी रफ़्तार से गुज़रता रहा और फिर वो वक़्त भी आया, जब परिवार के सदस्यों ने महसूस किया, कि महावीर का घर में होना या न होना बराबर है। तब उनके भाई ने अपने परिवार से विचार-विमर्श किया, कि जब महावीर भौतिक स्वरूप में सामने होते हुए भी, वहाँ मौजूद नहीं, तब उसको रोककर रखने का क्या अर्थ रह जाता है? बेहतर है, कि उसे सन्यस्थ होने की अनुमति दी जाए। इस तरह से सहमति मिलने के बाद ही वर्धमान ने सन्यास का मार्ग अपनाया और बारह वर्षों तक साधना करने के बाद, वो भगवान महावीर स्वरूप सामने आए।

आसूदाराम की भी स्थिति ठीक भगवान महावीर जैसी ही हो गई थी। वो कभी किसी बात की शिकायत नहीं करते थे, परंतु विरहाग्नि में खोए-खोए से रहने लगे। मीरा की विरह-वेदना को भला कोई और कैसे जान सकता है?

ऐ री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दर्द न जाने कोय।

सद्गुरु से मिलने की चाह, वो भाव-विह्वलता, वो सद्गुरु के दर्शनों की प्यास आसूदाराम को एक अलग ही लोक में ले जाती थी। अपने प्रेमी प्रियतम की याद में वो गुप-चुप आँसू बहा लिया करते, लेकिन किसी से कुछ नहीं कहते। वो अपनी आँखों में हर समय अपने सद्गुरु की तसवीर लिए फिरते थे।

कागा चुण-चुणकर खाइयो, मेरे सब हाड़ और माँस।
बस दो नैना मत खाइयो, कि सद्गुर-दर्शन की आस।।

अब स्थिति ऐसी हो गई थी, कि पिता श्री लुधड़ोमल किसे रोकते? आसूदाराम भौतिक स्वरूप में तो सामने दिखाई दे रहे हैं, मगर वहाँ हैं ही नहीं। आसूदाराम का परिवार में होना या न होना अब अर्थहीन हो चुका था, इसलिए परिवार में चर्चा के बाद निर्णय लिया गया, कि विधी के विधान को बदला नहीं जा सकता। तब कहीं जाकर पिता श्री लुधड़ोमल जी, उनके सद्गुरू सच्चे साईं सतरामदास साहिब की पाँच वर्ष पूर्व मिली आज्ञानुसार, आसूदाराम को रहिड़की दरबार साहिब ले जाने के लिए सहर्ष राज़ी हुए।

उस समय आसूदाराम की उम्र 15 वर्ष ही थी (1910)। इस प्रकार विरह–वैराग्य का लगभग 5–6 वर्ष का लम्बा समय काटकर, आज वे अपने सद्गुरु के दरबार में उपस्थित होने को तत्पर हैं, तैयार हैं। आह ! ऐसे प्रेमी शिष्य, जिन्हें अपने सद्गुरु देव के चरण–कमलों से ऐसा दिव्य प्रेम है, वे निश्चय ही सर्वजगत में और वेदों में बड़भागी हैं।

''जो गुरु पद अंब्ज अनुरागी, से लोकहुँ बड़भागी।''

यह दास ऐसे परम प्रेमियों के श्री चरणों में बार–बार नमन् करता है और सद्गुरु चरणों के ऐसे अनुरागियों के

चरण–कमलों की धूलि सिर पर चढ़ाता है और स्वयं के लिये भी ऐसी ही शुभाशीष की याचना करता है।

जिनके चाले रतड़े पियारे, कंतु तिना के पास।
धूड़ि तिना की जे मिलैजी, कहु नानिक की अरदासि।।

जैसा कि यह जीव ऋणों से बँधा हुआ है, देव–ऋण, पितृ–ऋण, गुरु–ऋण। अतः ऐसा कह सकते हैं, कि बालक ने सद्‌गुरु के पास ले जाने के लिए पिताश्री रज़ामंदी पाकर प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष पितृ–ऋण से मुक्ति पायी।

ψΨΨΨψ

(‘‘टिप्पणीः- पाठकगण कृपया ध्यान दें, कि श्री गुल पुरस्वानी जी द्वारा लिखी गई मूल पुस्तक ‘‘जीवन-दर्शन’’ के इस संस्करण में लेखक तथा पू. बाबासाईं की सहमति से अध्याय-3 एवं 4 में कुछ बदलाव मेरी ओर से किए गए हैं, इसलिए मेरे द्वारा कदाचित हुई किसी भी भूल-चुक के लिए मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ।’’ **शंकर मंशानी**)

अध्याय–5

सद्‌गुरू के दरबार में आगमन

बालक श्री आसूदाराम की तीव्र अभिलाषा को पूर्ण करने हेतु आज पिता श्री लुधड़ोमल जी, उन्हें साथ लेकर रहिड़की स्थित संत श्री सांईं सतरामदास साहिब जी के दरबार में उपस्थित हुए हैं। यह बात सन् 1910 की है और इस समय श्री आसूदाराम साहिब जी की उम्र 15 वर्ष की है। दरबार में प्रथम कदम रखते ही ऐसा लगा, मानो उन्होंने जीवन का परम लाभ पा लिया हो। उनके मन के सारे दुःख–क्लेश मिट गये।

करत प्रवेस मिटे दुःख दावा, जनु जोगी परमारथु पावा।

अर्थात्– प्रवेश करते ही उनके दुःख–दाह (अग्नि) मिट गये, मानो किसी योगी ने परमार्थ लाभ पा लिया हो।'

जिस क्षण की चाह ने उन्हें वर्षों दुःसह विरह दुःख सहने को मजबूर किया था। जिस चाह ने उनके दिन का चैन एवं रातों की नींद तक छीन ली थी, जिस क्षण की चाह ने उनके मुख की मधुर मुस्कान और मन की उमंग काफूर कर दी थी, वही चिर प्रतीक्षित क्षण प्रभु की परम कृपा से आज उनके जीवन में आया है, आज उनके आनन्द की कोई सीमा ही न थी। आज बालक आसूदाराम साहिब जी ने परम प्रेम से श्री सद्‌गुरु देव के दरबार के चौखट का इस प्रकार भाव पूर्वक वन्दन किया है।

'जिथे जाइ बहे मेरा सतगुरु, सो थान सुहावा राम राजे।
सा धरति भई हरिआवली, जिथे मेरा सतगुरु बैठा आइ।
से जन्त भये हरिआवले,जिनि मेरा सतगुरु देखिआ जाइ।

इस समय रहड़की दरबार में दरबार साहिब जी की गद्दी पर परमपूज्य सद्‌गुरु सांईं सतरामदास साहिब के मन रूपी मान

सरोवर के राजहंस परम पूज्य संत सांईं कँवरराम साहिब जी विराजमान हैं। बालक ने उनके दर्शन किये और नेत्र प्रेमाश्रुओं से भर आये, शरीर पुलकित हो उठा है, अपने सद्गुरु देव को, इष्टदेव को पहिचान करके मानों दण्ड की भाँति चरणों में लेट गये। उनकी इस दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

''सजल नमन तन पुलिक, निज इष्टदेव पहिचान।
परेउ दंड जिमि धरनि तल, दसा न जाय बखानि।।

वे मन ही मन अपने स्वामी से इस प्रकार प्रार्थना करने लगे–

''मो सम दीन न दीनहित, तुम समान रघुवीर।
अस विचार रघुवंशमणि, हरहु विषम भवभीर।।
कामहिं नारि पिआरी जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहिं राम।।

तूं सखी आहीं सबाझो, दर अथम् तुहिंजो झलियो।
हाक तुहिंजीअ खे ॿधी माँ, दूर खाँ आहियाँ हलियो।
महिर कर मुहिंजा मिठा, मुहिंजी मन्दायुनि <u>डे</u> न <u>डिसु</u>।
ऐब मूमें अणमणियां थी, सच–सच अथमि तोसां सलियो।
तूं सखी....

यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा, कि इस बीच संत सांईं सतरामदास साहिब जी सन् 1910 में देह त्यागकर ईश्वरीय धाम में पहुँच चुके थे। श्री लुधड़ोमल जी ने बालक को परम पूज्य संत साईं कँवरराम साहिब जी को समर्पित करते हुए उन्हें पूर्व का सब वृतान्त कह सुनाया, जो हाजीखान गाँव में घटित हुआ था।

सब वृतान्त सुनकर कृपा–सिंधु, प्रेम, माधुर्य, मर्यादा के धनी, भक्त एवं शरणागत–वत्सल संत श्री कँवरराम साहिब जी ने

मंद–मंद मुस्कान बिखेरते हुए बालक को प्रेम पूर्वक निहारा। कुछ क्षण भाव में निमग्न रहने के उपरांत, संतों ने भी श्री लुधड़ोमल जी को बड़े ही प्रेम एवं गंभीर भाव से बालक को स्वयं के लिए उसी भाव से स्वीकारने के लिये सहमति प्रकट की, जिस भाव से उनके समर्थ सद्‌गुरु सांई सतराम दास साहिब ने स्वीकार किया था। इस समय संत श्री कँवरराम साहिब जी के हाव–भाव से श्री लुधड़ोमल जी को मन–ही–मन ऐसा स्पष्ट प्रतीत हुआ, मानो संतों ने अपनी मुखमुद्रा से यह कह दिया हो, कि बालक के प्रति आप बिल्कुल निश्चिन्त रहें, वह जिस प्रकार आपके पास कुशल एवं सुरक्षित रहता आया है, वैसा या उससे भी अधिक कुशल एवं सुरक्षित यहाँ रहेगा। हाँ, साथ ही जिस भाव से आप इसे यहाँ लाये हैं, आपके मन की वह मंगल कामना भी अवश्य पूर्ण होगी।

इधर श्री आसूदाराम साहिब जी के नेत्र सिंध देश के सूर्य, कमल–नयन, चन्द्रोज्जवल, उन्नतललाट, कृष्ण–स्वरूप सद्‌गुरु सांई कँवरराम साहिब जी के दर्शन पाकर अघाते नहीं थे, तृप्त नहीं हो रहे थे। उसने मानो सारा सुख और संपूर्ण लाभ पा लिया हो। अब तो वह रह–रहकर बस यही प्रार्थना कर रहा था, अनुनय–विनय कर वरयाचना कर रहा था, कि हे स्वामी ! अब कृपा करके मुझे अपने चरण–कमलों में केवल अनन्य प्रेम प्रदान कीजिए।

लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी,
तुम्हरें दरस आस सब पूजी।
अब करि कृपा देहु वर ऐहू,
निज पद सरसिज सहज सनेहू।

''हे स्वामी ! आपके दर्शन से बढ़कर लाभ और सुख की कोई सीमा नहीं है, और आपके दर्शन से मेरी सब आशाएँ पूर्ण हो गई हैं अब आप कृपा करके यही वरदान दीजिए, जिससे आपके चरण–कमलों में मेरा स्वाभाविक अनन्य प्रेम उपजे।''

अध्याय–6

सद्गुरू सांई संत कँवरराम साहिब

महामहिम ऋषीश्वरों ! आपका यह अकिंचन दास अब आपके सम्मुख रहिड़की के दरबार साहिब के उस समय का कुछ वर्णन करना चाहता है। सिंध के मान्य दरबारों में **रहिड़की–दरबार** का नाम अग्रणी है, जहाँ से संगीत के सम्राट महान् सामर्थ्यशाली पूर्ण संत सतरामदास साहिब जी ने अपनी महानू आध्यात्मिक जीवनचर्या द्वारा सादगी, सच्चाई, पवित्रता, विनम्रता, कर्म, भक्ति, ज्ञान, त्याग, तपस्या, परोपकार का संदेश सिंध के कोने–कोने तक पहुँचाया। सुर एवं राग के देवता तो मानों संत श्री सतरामदास साहिब जी के कंठ में विराजमान रहते थे। घंटों अविरल भजनभाव में लीन संत सतरामदास साहिब को समय का भान ही नहीं रहता था। ऐसे में एक अवसर पर तो उन्होंने लगातार चौबीस घंटे दिव्य राग–रागिनियों और आलापों में ईश्वर भजन गाकर एक अनोखी मिसाल ही कायम की थी। उन्होंने एक नूर से उपजे इस जगत के हिंदू–मुस्लिमों को सदैव एकता एवं सद्भाव का पाठ पढ़ाया था। प्राणी मात्र की सेवा, परोपकार तो मानो उनके रोम–रोम में समाया था। गृहस्थाश्रम धर्म का पालन करने वाले इस दिव्य संत ने **झोली** करके हजारों–लाखों रुपये, सोना–चाँदी आदि गरीबों–अनाथों, जरूरतमन्द सवालियों में बाँट दिये थे। उनके महान् जीवन–मूल्य के दर्शन तो उनकी इस बात से होते हैं, कि इतने पर भी आप स्वयं अपना एवं परिवार का गुजर–बसर अपने पसीने की कमाई से करते थे। निष्कामता का इससे उत्कृष्ट आदर्श और क्या हो सकता है। उन्होंने समाज में फैली कई कुरीतियों, बुराइयों और अंधविश्वासों पर तीखी प्रतिक्रिया एवं प्रहार करके, महान समाज सुधारक का काम किया। इस पूर्ण निष्कामी सहृदय संत के द्वारा

अनेक सूरदासों, अनाथों, अपंगों की सेवाएं सम्पन्न होती थीं। वे सदैव स्वयं को चर–अचर जगत का सेवक मानते थे।

''सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामी भगवन्त।।''

उनके द्वार से कभी कोई सवाली खाली न गया। सदा हर समय आत्मीय आनन्द में निमग्न रहने वाले अनन्य उपकारी संत सतरामदास साहिब, स्वयं पूर्ण ब्रह्मज्ञानी संत होते हुए भी, सिंध के अनेक संतों, दर्वेशों, फकीरों, महन्तों से मधुर आत्मीय रिश्ता कायम किये हुए थे। यही कारण रहा, कि विनम्रता की इस प्रत्यक्ष मूर्ति को सिंध के सभी संत–महात्मा बड़े सम्मान एवं श्रद्धा–भक्ति की दृष्टि से देखते थे।

नित्य योग निमग्न संत सतरामदास साहिब ने अपने प्राण–प्रिय परम शिष्य संत कँवरराम साहिब जी को भी ऐसे सांचे में ढाला, कि जिससे वे हर प्रकार से योग्य एवं दिव्य बनकर निकले। ऐसे समय जब संतों के परोपकार एवं योग, भक्ति, शक्ति का सुयश सब ओर गाया जा रहा था, अचानक संत सतरामदास साहिब जी ने अपने परम शिष्य संत कँवरराम साहिब जी को अपना उत्तराधिकारी बनाकर बयालीस वर्ष की अल्पायु में इस नश्वर काया का त्याग कर, दिनांक २० जनवरी, 1910 में अनन्त से मिलकर अनन्त हो गये।

''जियूं जल में जल आइ खटाना।
तियूँ ज्योति संग ज्योति समाना।।
मिट गये गवन पाए विश्राम।
'नानक' जनके सद् कुर्बान।।''

परम पूज्य संत सतरामदास साहिब के असमय देह त्यागकर सत्यलोक सिधारने के बाद रहड़की दरबार की गद्दी पर विराजमान हुए भगत कँवरराम साहिब। समर्थ सद्गुरु से प्राप्त सौगात से सम्पन्न रूहानी अमानत के वारिस संत कँवरराम साहिब को उनके समर्थ सद्गुरु ने संगीत की अपार सौगात बक्शी थी। आह ! वे सिंध के आकाश में ऐसे शोभायमान हुए जैसे शरद पूर्णिमा का चन्द्रमा। प्रभु श्रीराम की मर्यादा, गुरु नानकदेव की दैन्य, श्रीकृष्ण की मधुरता एवं देवाधिदेव महादेव की सरलता धारण करने वाले संत कँवरराम साहिब जी का सुयश समय के साथ सिंध एवं सिंध के बाहर पंजाब, बलूचिस्तान में ऐसा फैला, कि उक्त सभी प्रांत उनके प्रेम, भक्ति से आप्लावित हो गये। अपने दिव्य सद्गुरु से प्राप्त अलौकिक ज्ञान, भक्ति, निष्काम सेवा, परोपकार, विश्व–बन्धुत्व का उन्होंने भक्ति संगीत के माध्यम से ऐसा प्रचार–प्रसार किया, कि हजारों–लाखों लोग उनके अनुयायी हो गये। भगत शिरोमणि संत कँवरराम साहिब के साथ उनके सद्गुरु परम पूज्य संत सतरामदास जी का नाम युगों–युगों तक विश्व क्षितिज में जगमगाता रहेगा। अतः ऐसे में हम रहड़की दरबार की रौनक की कल्पना सहज ही कर सकते हैं।

यदि उन दिनों का उल्लेख करें, तो वस्तुतः उस समय रहिड़की–दरबार एक पवित्रतम तीर्थ का रूप धारण कर चुका था, जहाँ नित्य प्रति सैकड़ों श्रद्धालुओं का तांता लगा रहता था। समता के सिंहासन पर विराजमान संत कँवरराम साहिब जी प्रत्येक जीवमात्र का, चाहे वह जाति एवं पद के मान से कितना भी उच्च अथवा निम्न हो, समान रूप से स्वागत करते थे और सबको ईश्वरीय अमृत का पान कराते थे। वे विनम्रता, मर्यादा एवं प्रेम की विलक्षण मूर्ति थे। ईश्वर ने उन्हें अपार सुन्दरता, सौम्यता, सुडौलता प्रदान की थी, उस पर समर्थ सद्गुरु ने उन्हें

दिव्य–अलौकिकता प्रदान की। यही कारण था, कि वे अत्यन्त सादी वेशभूषा में भी इतने आकर्षक प्रतीत होते थे, कि कामदेव भी उनकी सुन्दरता का विविध भांति से स्तुति करने को विवश हो उठता था। उनके स्वभाव की मधुरता, शील, विनय, मर्यादा, प्रेम, आतिथ्य, नीति–निपुणता प्रत्येक मानव मात्र को अनायास ही उनकी ओर आकर्षित कर लेती थी, ऐसी थी उनकी दिव्यता।

उनकी उपस्थिति इतनी पावन होती थी, कि वे जहाँ–जहाँ पग रखते थे, वहाँ–वहाँ मानो अमृत की धारा बह निकलती थी। जिससे समस्त जन समुदाय में स्वतः ही पवित्र पावन ईश्वरीय भावों की असंख्य लहरें उठने लगती थीं। उनके दर्शन एवं स्पर्श से खोटा भी खरा हो जाता था, पतित भी पावन हो जाता था और पावन तो मानो प्रत्यक्ष ईश्वरीय उपस्थिति का सामीप्य अनुभव करने लगता था। मान–अपमान, स्तुति–निंदा, हर्ष–शोक आदि मायाकृत गुण–दोषों से सर्वथा निर्लिप्त पूज्य भगत कँवरराम साहिब सदा हर समय आत्मनिष्ठ, आत्मस्थित, आत्मस्मृति में निमग्न रहते थे। प्रत्येक मानव–मात्र को देश काल परिस्थिति के अनुरूप शास्त्र–सम्मत कल्याणप्रद उपदेश करने वाले इस दिव्य संत का मानो व्यक्तिगत जीवन तो था ही नहीं। उनके जीवन का या यों कहें, संसार में आगमन का, मात्र एक ही उद्देश्य था, प्राणीमात्र का कल्याण–

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।

सब जीवों से अतुलनीय विशुद्ध प्रेम उनका स्वभाव था। किसी के प्रति भेदभाव, पक्षपात, द्वेषभाव नहीं। सबके साथ यथायोग्य उचित व्यवहार करना उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी, चाहे वह हिंदू हो या मुस्लिम। सारे संसार में न तो कोई उनका अपना था न पराया था, उनके लिये सब समान थे।

''तुलसी ममता राम सों, समता सकल संसार।''

उनकी दयालुता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है, कि वे जहाँ भी भजन करने जाते थे सौ, दो सौ लूल–लंगड़े, अंधे–बहरे, मस्त–मतवाले उनकी टोली के साथ रहते थे, जिनकी सेवा एवं भरण–पोषण का काम पूज्य भगत कँवरराम साहिब जी के महान् प्रताप से सम्पन्न होता था। सच ही कहा है–

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानांम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

अर्थात्– यह अपना है और वह पराया है, ऐसा विचार उन लोगों को आता है, जो छोटे हृदय के होते हैं। महान् और उदार हृदय वालों के लिये तो यह सारा संसार अपना ही कुटुम्ब है।

ईश्वर की उन पर इतनी तो अपार कृपा थी, कि सबके मनोरथ उनकी दया से पूर्ण हो जाते थे। उनके द्वार से कभी भी कोई निराश नहीं लौटा। लक्ष्मी तो मानो उनके सम्मुख हाथ जोड़े आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ी रहती थीं। यह उनके सत्यनिष्ठा का ही प्रमाण है, कि उनके संकल्पमात्र से, इच्छा मात्र से, भक्तजनों की आधि–व्याधि, उपाधि त्रिताप तत्क्षण दूर हो जाते थे–

''सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम।''

अर्थात्– सत्य आचरण वाले पुरुष की वाणी सदा ही फलित होती है।

उनकी निर्मल भक्ति का यह प्रत्यक्ष प्रभाव था, कि वे जहाँ–जहाँ भी भजन करने पहुँचते, वहाँ–वहाँ जंगल में मंगल हो जाता था। पूज्य भगत साहिब का आगमन सुनकर दूरदराज के गाँवों तक की जनता उनके दर्शन करने और भजन श्रवण हेतु आ पहुँचती थी। उनकी मधुर अमृतमयी मर्मस्पर्शी वाणी सुनकर सब जीव मानो द्वन्दों एवं तापों से भरे इस संसार से

निकलकर, यथार्थ जीवन के मूल्यों से प्रत्यक्ष साक्षात्कार करते थे। वह आनन्द जो उनके निज का है, जिस आनन्द पर उनका मौलिक अधिकार है, जिसे उसने स्वयं ही अज्ञानवश तुच्छ कामनाओं, वासनाओं की पूर्ति हेतु त्याग कर, अपार दुःख मोल लिया है, उस निजानन्द की प्रत्यक्ष अनुभूति प्रत्येक श्रोता को पूज्य श्री भगत साहिब के भजन में सहज ही होने लगती थी। यही कारण था, कि जहाँ–जहाँ वे जाते, वहाँ के जीव–जन्तु, वन पर्वत, चर–अचर सब धन्य हो जाते। धन्य हैं वे माता–पिता, जिन्होंने ऐसे अमोलक रत्न को जन्म दिया।

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाए,धन्य सो नगर जहाँ ते आए।
धन्य सो देसु, सैलु वन गाँव,जहँ जहँ जाहि धन्य सो ठाउँ।

सिंध देश की कुमदिनी को खिलाने के लिये चन्द्रमा के समान इस निर्मल संत शिरोमणि भगत कँवरराम साहिब जी को स्वयं का व्यक्तिगत जीवन जीने का तो मानो जन्म से ही अवकाश न मिला हो। अबोधपन में ही अपने गरीब माता–पिता की आजीविका कमाने में कोहर (उबले–चने) बेचकर मदद करते थे। खेलने–कूदने की बाल्यावस्था उन्होंने संगीत शिक्षा एवं गायन विद्या की कठोर साधना को अर्पण कर दी। किशोरावस्था उन्होंने समर्पित सद्गुरु सेवा में गुजार दी। यौवनावस्था के आरम्भ होते ही उन्हें सद्गुरु बिछोह की अप्रत्याशित अनबूझ वेदना मिली, जो जीवनपर्यन्त उन्हें उस अगम देश की ओर खींचती रही। उनकी युवावस्था से प्रौढ़ावस्था तो मानो कब आ गई, ज्ञात ही नहीं हुआ। एक पैर दरबार में, तो एक पैर नगर–नगर, गाँव–गाँव सद्गुरू सांई संत कँवरराम साहिब का भजन में गुजरता। न रात का पता, न दिन का, न स्वास्थ्य का पता, न खान–पान का। दिन–रात भजन–कीर्तन और दीन–दुखियों, सवालियों, जिज्ञासुओं की भीड़। दीन–दुखियों एवं सवालियों का तो मानो उन पर एकाधिकार था।

दान–दक्षिणा चाहिये या सहायता, कर्ज माफ करवाना हो, या बेटे द्वारा की गई हत्या माफ करवाना हो, बीमार को स्वथ्य करवाना हो, या मृत बच्चे को जीवित करना। सबका एकमेव आधार थे, पूज्य भगत कँवरराम साहिब। ये निर्मल, परदुःख कातर करुणामूर्ति संत भी सबका काम, सबका दुःख, पूर्ण दीन एवं निराभिमान भाव से गरीब–अमीर, ब्राह्मण–शूद्र, हिन्दू–मुस्लिम का भेदभाव किये बिना पूर्ण करते थे।

अफसोस ! जीवन पर्यन्त उनके द्वारा मुक्तहस्त भाव से बाँटे गये ज्ञान, भजनामृत, लाखों रुपयों, सोना–चाँदी, जमीन आदि से इस संसारी जीव की भूख न मिट सकी। अभी इसे ऐसे निर्मल निष्काम संत से और भी चाहिये था, और भी कामना थी। कामना भी ऐसी, कि उसकी मानसिकता का क्या कहा जाय? इन्हें उनसे उनका खून चाहिये था, माँस चाहिये था, जीवन चाहिये था। वाह ! क्या खूब कामना की है !

अरे ! ऐसे पवित्र निर्मल संत से याचना की भी, तो शरीर की ! जिसे उन्होंने आरम्भ से ही तुच्छ और नश्वर समझकर, उससे अपना नाता त्यागकर, स्वयं को अजर–अमर आत्मा से तदाकार कर लिया था। बेशक वह शरीर उनके अपने लिये मायना नहीं रखता था, किंतु निःसंदेह उनकी देह उन हजारों–लाखों जन मानस के लिये अत्यन्त उपयोगी थी, जिन्हें उनसे अपार लाभ हो रहा था। अरे ! माँगा भी तो उनसे, जिन्होंने जन्म से ही देना सीखा था। जिन्होंने नित्य प्रति जिसने जो माँगा, उसे वह दिया। क्या अभी भी उनकी 'देयता' पर कुछ शक था ?

अस्तु ! सो इस महान् दानवीर संत ने हँसते–हँसते अपनी देह भी न्यौछावर कर दी, जाति, देश, धर्म पर। शहीदी का जाम पीकर अमर हुए इस महान् परोपकारी संत ने जीवन पर्यन्त तो

धर्म, नीति, मर्यादा का पाठ पढ़ाया ही, किंतु शहीद होकर अपने इस पाठ को युग–युगान्तरों तक जीवन्त कर दिया। हम ऐसे महान् परोपकारी दिव्य संत **अमर शहीद भगत कंवरराम साहिब जी** के पवित्र पाद्–पदमों में बार–बार नमन करते हैं।

''रखोगे याद हमेशा वह निशानी हूँ मैं।
गाते रहोगे हरदम वह कहानी हूँ मैं।।
मर कर भी अमर रहूँगा हरपल ऐ जगवालो !
यथार्थ जीवन–मूल्यों की वह जुबानी हूँ मैं।।'

'बोलो अमर शहीद भगत कँवरराम साहिब की जय।'

ψΨΨΨψ

अध्याय–7

सद्गुरू–सेवा

संत श्री आसूदाराम साहिब जी ने अपने प्राणप्रिय सद्गुरु की दरबार में पहुँचते ही मानो संसार के समस्त सुख पा लिये हों। जहाँ पहुँचने की उनकी चाह वर्षों से, या यूं कहें जन्मों से थी, वहाँ पहुँचकर उन्हें कितना आनन्द प्रतीत हो रहा होगा, इसकी तो मात्र कल्पना ही की जा सकती है। वे दरबार साहिब के पावन दर्शन करके, वहाँ की पावन भूमि के चप्पे–चप्पे में रम जाना चाहते थे। वहाँ पहुँचकर उनकी विरह पीड़ा कम हुई। मन शीतल और शांत हो गया, चित् एकाग्र हुआ। एकाग्र चित् में निर्णायक शक्ति ने जन्म लिया। शीघ्र ही सेवा, स्मरण, सत्संग को एकमेव लक्ष्य बनाकर वे अपनी मंजिल की ओर कदम बढ़ाने लगे, तीव्र विरह–वैराग्य से उनके मन का मैल तो पहले ही धुल चुका था। मन का विक्षेप इस पावन दरबार में कदम रखते ही समाप्त हो गया, शेष रहा आवरण जो अब सिंध के शिरोमणि संत के पावन सान्निध्य–सत्संग से, सेवा–श्रवण से, धीरे–धीरे हटता–घटता गया।

वे अब दरबार साहिब की समस्त सेवाओं में अपना हाथ बटानें लगे। सेवा को ही अपना प्रमुख साधन बनाकर, वे तन–मन से उसमें लग गये। सत्संग से शीघ्र ही सेवा के रहस्य को जानकर, हर्ष–शोक में सदा सन्तुष्ट रहकर, वे निष्काम भाव से आपा त्यागकर, सेवा में निमग्न हो गये। अर्थात उन्हें सेवा में न थकान सताती, न ही काम में कोई अरुचि होती। अब उनके हाथ सदा सेवा में, दिल दिलदार के चिंतन में मग्न रहता।

‘हथ हाज में, दिल यार में।’

शीघ्र ही उनके सद्‌गुरु ने गौशाला की सेवा का भार उन्हें सौंपा, जहाँ उन्होंने एक जीवन्त मिसाल कायम की। उनकी गौ–सेवा से प्रसन्न होकर ही सद्‌गुरु ने उन्हें **नाम–रत्न** रूपी सर्वोत्तम उपहार दिया। उनकी अविस्मरणीय गौ–सेवा का वर्णन हम एक अलग अध्याय में करेंगे।

अस्तु ! संत आसूदाराम साहिब जी अब दरबार में सदा दास्य भाव से सेवा करते रहते थे। **दास** का अर्थ होता है, अपने स्वामी में पूर्ण निष्ठा एवं आस्था, विश्वास रखकर समर्पित भाव से सेवा करना। सच्चा दास सदैव बिना आलस्य, दम्भ एवं अहंभाव से सेवा करता है। वह अपने स्वामी को अपने इष्ट का रूप ही दे देता है। इतिहास साक्षी है, कि ऐसे दासों एवं सेवकों को स्वामी भी हमेशा के लिये अभयदान देकर, बिन मांगे ही परम पद का अधिकारी ही बना देते हैं

सच्चा सेवक तो अपने सेवा अवसरों का पूरा श्रेय अपने सद्‌गुरु को समर्पित कर स्वयं कर्तापन से मुक्त हो जाता हैं। वह तो स्वयं को निमित्त समझकर, उसे सद्‌गुरु कृपा ही मानता है। सच्चा सेवक आदेश की प्रतीक्षा के पूर्व ही यथोचित्त कार्य स्वामी की इच्छानुसार पूर्ण करता है, और तो और, ऐसे सच्चे सेवक तो अपने स्वामी के पास जाने में भी संकोच करते हैं, कि कहीं स्वामी उनकी सेवा की प्रशंसा न कर दे, कहीं सेवा के प्रति कोई उपहार न दे दें। उन्हें तो अपने स्वामी से मात्र एक ही पुरस्कार की अपेक्षा होती है, और वह है उनकी प्रसन्नता।

'सुप्रसन्न भये गुरुदेव, पूर्ण होई सेवक की सेव।'

स्वामी की प्रसन्नता में ही सच्चे सेवक का सर्वकल्याण समाहित रहता है, पूर्ण सच्चे समर्थ स्वामी भी ऐसे सेवक, ऐसे दास का सदैव ध्यान रखते हैं। उसका योग–क्षेम करते हैं। उसे तीनों तापों से मुक्तकर, सब प्रकार से सुखी करते हैं। अधिक

क्या कहें, वस्तुतः उसे तो वे सर्व सुखदाता प्रभु से ही मिला देते हैं। गुरुवाणी में उल्लेख आया है–

गुरु के गृहि सेवकु जो रहे,
गुरु की आज्ञा मन में सहै।
आपस कउ करि, कछु न जनावै,
हरि हरि नाम रिदै सद धिआवै।
मन बेचें सतिगुरु के पास, तिस सेवक के कारज रासि।
सेवा करत होई निहकामी, तिस को होत प्रापति स्वामी।।

भक्त वत्सल, शरणागत हितकारी भगत कँवरराम साहिब जी ऐसे ही सच्चे पूर्ण स्वामी थे और श्री आसूदाराम साहिब ऐसे ही योग्य एवं निष्ठावान सेवक थे।

इधर संत आसूदाराम साहिब जी रहिड़की दरबार में सेवा से उपराम होने पर, अपना शेष समय अपने सद्‌गुरु के पावन उपदेश एवं सत्संग श्रवण करने में लगाते थे। वे वैराग्य–मूर्ति तो थे ही, उनका मन माया के विषयों से उदासीन तो था ही, अब वे ऐसे पावनधाम में सद्‌गुरु के वचन रूपी अमृत से अपने मन में बोयी ईश्वर प्रेम रूपी बेल को सींचने लग गये। सिंध के शिरोमणि संत भगत कँवरराम साहिब जी जिनके घड़ी दो घड़ी दर्शन, संग, सत्संग, सान्निध्य के लिए लोग जहाँ–तहाँ से कष्ट उठाकर आते थे और उनके मधुर मिलन एवं वचन श्रवण को आजीवन स्मरण करते थे। ऐसे दिव्य संत शिरोमणि के संग में संत आसूदाराम साहिब अब नित्य प्रति रहने लगे। वे श्रद्धावान थे, श्रद्धावान को अवश्य ज्ञान प्राप्त होता है। अतः यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है, कि ऐसे संत के संग में आसूदाराम साहिब जी कैसा अनुपम लाभ प्राप्त करते होंगे? वे स्वभाव से सरल और गंभीर तो थे ही, अब संतों के पावन संग में रहकर उन्होंने शील, संतोष, दया, करुणा, सत्य आदि गुणों को आत्मसात

किया। समर्थ सद्गुरु के सान्निध्य में उन्होंने अपने वैराग्य को अभ्यास से जोड़ लिया। भक्ति और सद्गुरू सेवा ज्ञान, वैराग्य एवं अभ्यास के बिना अधूरे हैं। अभ्यास हो और वैराग्य न हो तो अभ्यास पूर्ण फलित नहीं होता है। वैरागी की दृष्टि सदैव लक्ष्य पर रहती है, वह सदैव सावधान चित्त रहता है, कि कहीं माया मुझे वश में न कर ले।

वैरागी विषय सुखों का त्यागी होता है, विषयी मनुष्य विषयों का दास होता है। वैरागी गुरु एवं भगवान का दास होता है। वह स्वयं को अहं से बचाकर अपने सद्गुरु के पावन चरण कमलों को दृढ़ चित्त से पकड़े रखता है। ऐसे सेवक के समर्थ सद्गुरु अज्ञान–आवरण दूरकर सत्य से साक्षात्कार कराते हैं। जिसके फलस्वरूप उस सेवक के हृदयाकाश में ज्ञान का प्रकाश जगमगाने लगता है। श्री कबीर साहिब ने ऐसे अलौकिक संतों के संग से जिज्ञासु को प्राप्त अनुपम लाभ का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है–

पहले यह मन काग था, करता जीवन घात।
'कबीर' अब हंसा भया, मोती चुन–चुन खात।।

अतः अब संत आसूदाराम साहिब जी को समर्थ सद्गुरु की अपार कृपा से अध्यात्म के रहस्यों का धीरे–धीरे ज्ञान होता गया, उनके हृदय पर पड़े अनेक भ्रम के पर्दे अब दूर हो गये, हृदय में ईश्वर की पावन अनुभूतियाँ होने लगीं। सिंध के दर्वेश शेख फरीद साहिब ने सद्गुरु एवं ईश्वर से ऐसी सच्ची प्रीत करने वालों के पाद–पद्म चूमते हुए कहा है–

'परवरदिगार अपार अगम बेअन्त तूं।
जिना पछाता सच, चुमाँ पैर मूँ।।
आप लिये लढ़ लाइ, दर दर्वेश से।
तिन धन जणेदी माउ, आये सफल से।।'

इधर श्री आसूदाराम साहिब सेवाकार्यों से उपराम होने के बाद सद्गुरुदेव के सत्वचन श्रवण के साथ–साथ एकान्त में बैठकर स्वाध्याय और ईश्वर चिंतन करते थे। वे नियमित रूप से सुखमणी साहिब, जपुजी साहिब, आसादीवार, रहिरास, कीर्तन सुहेला आदि का पाठ किया करते थे। रात्रि के समय वे अपने स्वामी, अपने सर्वस्व की समाधि साहिब के चरणों में जाकर सोते थे। आह ! उन्होंने सोने का स्थान भी किस निपुणता से चयन किया है! वह स्थान जो दरबार साहिब में सबसे पावन स्थान है। वह पुण्य स्थान जो सिन्ध के शिरोमणि संत की सतत् उपस्थिति का प्रत्यक्ष अनुभव कराता है। वह स्थल जो पावन तीर्थ तुल्य है। जहाँ की माटी को, धूल को श्रद्धालुजन अपने सिर पर धारण करते हैं और नमन कर स्वयं को कृतार्थ करते हैं।

सिंध के संत कवि श्री शाह अब्दुल लतीफ साहिब ने ऐसे संत के पावन स्थल की स्तुति में कहा है–

सारी रात सुबहान, जागी जिनि याद कयो।
तिनि जी 'अब्दुल लतीफ' चए, मिटीअ लधो मानु।
करोड़े कनि सलामु, अची आसण तिनि जे।

अर्थात– जिन फकीरों, दर्वेशों, संतों ने रातें जाग–जागकर उस ईश्वर का स्मरण–चिंतन किया है, उनकी चौखट की माटी भी आज पूज्य है। आज भी करोड़ों जन उनकी पावन भूमि पर आकर अपना शीश नवाते हैं और श्रद्धा सुमन चढ़ाते हैं।

ψΨΨΨψ

अध्याय–8

गौ–सेवा

हिन्दू संस्कृति से अधिक महान् विश्व की कोई संस्कृति नहीं है। हिन्दू ऋषियों, मुनियों, अवतारों ने जो मानव जीवन–मूल्य स्थापित किये हैं, वे निःसंदेह महान् अवधारणा रखते हैं। ऐसी ही एक अवधारणा है, **'गौ–सेवा'** की।

गौ–सेवा की अवधारणा का सीधा तात्पर्य गौ–दुग्ध से है। गौ–दुग्ध सभी दुग्धों से अति निर्मल है। इसके पान करने से मन में स्वतः निर्मल भाव स्फुटित होने लगते हैं। मन के साथ इससे पंचभौतिक तन को भी सुव्यवस्थित पुष्टि प्राप्त होती है। सन्त–महात्माओं ने ही नहीं, अपितु सर्व साधारण एवं वैज्ञानिकों ने भी गौ–दुग्ध के उपर्युक्त महत्व को भली–भाँति जाना है। हिन्दुओं ने जन्मोपरान्त माता के स्तन–पान के पश्चात् अपने तन–मन की पुष्टि के लिए गौ–दूग्ध का आश्रय लिया।

ऐसी अवधारणा है, कि माँ के दूध का ऋण कोई नहीं चुका सकता। विशाल हृदय हिन्दुओं ने माँ के दूध का ऋण न चुका सकने की महान् अवधारणा के साथ ही **गौ** को भी अपनी **'माँ'** का दर्जा दिया। अतः उन्होंने गौ–माता की सेवा एवं रक्षा का दायित्व भी अपने ऊपर उठाया और मन–वचन–कर्म से इसका पालन भी किया। संभव है कि गौ–सेवा गौ–रक्षा के निमित्त उन्होंने गौ को हमारे हिन्दू धर्म ग्रंथों में प्रधान स्थान दिया हो। कुछ भी हो, हमें हमारे धर्म–ग्रंथों की मान्यताओं को सर्वोपरि मानना है। धर्म–शास्त्रों में गौ–सेवा को धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष इन चारों फलों को देने वाली बतलाया है। गौ के शरीर में समस्त तैंतीस कोटि़ देवी–देवताओं का निवास है। पैरों में समस्त तीर्थ, गुहाभाग में लक्ष्मी, पीठ में ब्रह्मा, गले में विष्णु, मुख के अग्र भाग

में शिव जी का निवास है। अतः गौ–माता को सर्व देवमयी कहा गया है। उसकी श्रद्धापूर्वक सेवा करना सभी देवताओं की सेवा करने के समान है। गौ के पैरों की धूलि का तिलक करने पर तीर्थ में स्नान का पुण्य मिलता है। जहाँ गौएँ रहती हैं, वह भूमि तीर्थ तुल्य होती है। गौ–दुग्ध, गौ–दधि, गौ–घृत, गौ–मूत्र, गोबर सब अति पावन, आरोग्य देने वाले, आयु वर्धक होते हैं। जहाँ अन्य सब प्रकार की विष्ठा से जीव घृणा करता है, वहीं गोबर (गौ–विष्ठा) पवित्रता प्रदान करने वाला होता है। गौ–माता की पूँछ पकड़कर मनुष्य वैतरणी पार करता है। गउ माता स्वर्ग की सीढ़ी है। गौ–दान महादान है। अनेक पुण्यों के फलस्वरूप गौ–लोक की प्राप्ति होती है। गौ के दर्शन, स्पर्श, पूजन, नमस्कार, प्रदक्षिणा से परम लाभ प्राप्त होता है। गौ के समान क्षमाशील कोई पशु है ही नहीं। क्या यह उसके स्नेहमयी होने का द्योतक नहीं है ? गौ के सम्पूर्ण गुणों का वर्णन तो कोई कर ही नहीं सकता है। संक्षेप में गौ–माता की सेवा समस्त सुखों को देने वाली और ईश्वर प्राप्ति में परम सहायक है।

हमारे इतिहास में गौ–रक्षा एवं सेवा के अनेक प्रकरण मिलते हैं, जैसे गौ–रक्षा के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् भी राम के पूर्वज महाराजा दिलीप ने कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ की बछिया की रक्षा के लिए सिंह को अपना शरीर अर्पण कर दिया था। पाण्डु–पुत्र अर्जुन ने गौ–रक्षा के लिए बारह वर्षों का निर्वासन स्वीकारा था। श्रीकृष्ण ने तो स्वयं परब्रह्म होते हुए भी बृज में गउओं को चराया तक। उनका गौ–प्रेम तो अकथनीय है। सिंध के परम–पूज्य भगत कँवरराम साहिब जी ने गौ–रक्षा एवं सेवा के लिए जीवन पर्यन्त अथक प्रयत्न किये। इसी प्रकार भारतवर्ष में अनेक महान् गौ–भक्त हुए हैं। ऐसे ही एक गौ–भक्त थे, संत बाबा आसूदाराम साहिब जी, जिन्होंने अपनी विलक्षण गौ–सेवा से उच्च आदर्श प्रस्तुत किया।

जैसा कि श्री आसूदाराम साहिब जी ने गुरु दरबार रहिड़की साहिब में प्रवेश किया, तो उन्होंने वहाँ सेवा को ही सिद्ध मंत्र मान लिया। वे दिन–रात तन, मन, श्रद्धा और प्रेम से सबकी सेवा करते रहते थे। शीघ्र ही उन्हें गौ–सेवा के लिये नियुक्त किया गया, अर्थात् गौ–सेवा करने की आज्ञा दी गयी। ''आज्ञा सम न सु साहिब सेवा।'' आज्ञा पालन के समान सद्गुरु की और दूसरी कोई सेवा नहीं है। सेवा ही सद्गुरु को प्रसन्न करने का प्रधान साधन है। सेवा को सभी सद्–शास्त्रों ने बहुत महत्वपूर्ण माना है। सेवा के रहस्य को यदि कोई समझ ले, जान ले और उसी भाँति निष्ठाभाव से सेवा करे, तो सेवक निःसंदेह निहाल हो जाये। सेवा का मूल रहस्य छिपा है, अहं–त्याग में, आपा त्याग कर सेवा करने में। मैं कौन हूँ, किस पद पर हूँ, मेरी कितनी प्रतिष्ठा है, आदि सब बिसारकर, त्यागकर मन से सेवा करना ही यथार्थ सेवा है और ऐसी ही सेवा अध्यात्म मार्ग में सुफल प्रदान करने वाली होती है। कारण ऐसी सेवा से ही मन के मल–विक्षेप–आवरण दूर होते हैं और मन निर्मलता को प्राप्त होता है। निर्मल मन वाला सज्जन ही ईश्वर को प्रिय है और उसे ही ईश्वर की प्राप्ति होती है।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

निर्मल मन वाला सेवक सेवा के बदले किसी प्रकार की आशा एवं इच्छा नहीं रखता है। सत्यतः वह तो मात्र ईश्वर के नाम एवं चिंतन में ही पूर्ण संतुष्ट रहता है। इसी प्रकार श्री आसूदाराम साहिब जी ने जो सेवा की, वह उपरोक्त भाव से की। जब उन्हें गौ–सेवा सौंपी गई, तो वे उसमें रम गये। जो काम करना वह अच्छा करना एवं मन लगाकर करना तथा सेवा की तह तक पहुँचना, यह उनका स्वभाव था। ऐसी सेवा करने वाले के हृदय में सेवा के प्रति नित नये–नये भाव उत्पन्न होते हैं।

ईश्वर भी ऐसे सेवक के प्रति सदैव सहायक एवं अनुकूल होता है।

प. पू. भगत कँवरराम साहिब जी पूर्ण गौ–भक्त थे। वे गौ को माता समझकर सदैव जगह–जगह गौ–सेवार्थ नित्य निरंतर यत्न किया करते थे। श्री आसूदाराम साहिब जी ने भी उन्हीं से इस भाव को ग्रहण करके गौ को हृदय से माता मानकर उसकी सेवा में स्वयं को समर्पित कर दिया। वे दिनों–दिन गौ–माता की सेवा में निमग्न होते गये। उनकी गौ–सेवा विलक्षण थी। वे गौशाला की पूरी भूमि को पहले अच्छी तरह से साफ करते, उस पर हल्का–सा पानी छिड़ककर भूमि को नरम–मुलायम करते, उस पर से पत्थर–कंकड़ आदि हटा देते, ताकि उनकी गौ–माता को कोई कष्ट न हो, उनकी माँ को पूरा विश्राम मिले, उसे पूरा सुख–चैन प्राप्त हो। वे इस भावातिरेक में इतने बहे चले जाते, कि स्वयं के सब कपड़े उतारकर, मात्र अंगोछा धारण करके, उस स्थान पर लेट–लेटकर देखते, कि कहीं कोई बारीक–सा कंकड़–पत्थर या तिनका आदि तो नहीं पड़ा है, जो कदाचित उनकी 'माई' को लग जाये और उसे तनिक–सा भी कष्ट उठाना पड़े।

आह ! यह तो सेवा–भाव की अति ही हो गई, एक प्रकार से सीमा ही हो गयी। कैसी अनुपम सेवा और सेवा–भाव ! इतना तो सामान्य से सामान्य इन्सान भी समझता है, कि प्रकृति ने प्राणि मात्र को साधारण–सा कष्ट सहन करने की क्षमता दी ही है। फिर पशुओं को तो यह क्षमता प्रकृति ने मानव से काफी अधिक प्रदान की है। किन्तु भाव से परिपूर्ण हृदय के लिये ये बातें कोई महत्व नहीं रखतीं। वे तो अपने भाव में जो कर गुजरें वह थोड़ा ही है। अस्तु, श्री आसूदाराम साहिब जी इतनी सहृदयता से गौ–सेवा में निमग्न रहने लगे। एक दिन संध्या के समय इस प्रकार सेवा करते लेटते ही संयोग से ध्यान–स्थिति

हो गयी। इतने में गौधूलि का समय हो आया, सब गायें गौ–शाला आ पहुँची, किन्तु गौ–शाला का द्वार बन्द देख, वे वहीं रुकी रहीं। जब सद्गुरु सांईं कँवरराम साहिब जी ने इसका कारण जानना चाहा, तब उन्हें ज्ञात हुआ, कि गौ–शाला का द्वार भीतर से बन्द है तथा सांईं आसूदाराम साहिब जी भीतर केवल गमछा धारण किये हुए नग्नावस्था में लेटे हुए हैं।

शीघ्र ही सर्वज्ञ स्वामी श्री कँवरराम साहिब जी बैठक की ओर से गौ–शाला में खुलने वाले दरवाजे से गौ–शाला के अन्दर आये, अपने शिष्य को सेवा में लेटे ध्यान–स्थिति में देखा और श्री साईं आसूदाराम साहिब को सिर से लेकर पूरे शरीर पर हल्के से अपनी कृपा का स्नेह भरा हाथ घुमाया। ध्यान–स्थिति टूटते ही श्री साईं आसूदाराम जी ने अपने सद्गुरू के श्री चरणों में शीश झुकाया। श्री स्वामी जी उनकी अद्वितीय सेवा से अति प्रसन्न हुए और उन्होंने गद्गद् होकर अपने शिष्य को हृदय से लगा लिया और अपने बाहुपाश में लेकर उन्हें बैठक में ले गये तथा आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया। अन्य सेवादार से कहा कि गौ–शाला के दूसरे द्वार से गायों को ले जाकर उन्हें यथास्थान पर बांध दें।

यहाँ ऐसा कह सकते हैं कि यह सब लीला उस नित्य लीलाधारी ईश्वर एवं सद्गुरु ने अपने निर्मल भक्त को उसकी सेवा का सुफल प्रदान करने हेतु ही रची थी। कल्पना करें, कि वह दिन उस सेवक, अर्थात् उस अगम के आशिक श्री आसूदाराम साहिबजी के लिये, कितने सौभाग्य का रहा होगा, जिस दिन उसकी सेवा अभूतपूर्व रूप से सफल हुई? जिस साधन को साधकर उन्होंने अपने इष्टदेव, गुरुदेव को सुप्रसन्न करने के लिए, उनके महान् आशीर्वाद पाने के लिए, रातों की नींद, दिन का चैन, घर का सुख, संबंधियों का स्नेह त्याग दिया था। वह सुअवसर आज दैवयोग से अनायास ही आ गया। अतः उनके

आनन्द एवं हर्षोल्लास की कोई सीमा ही न रही। स्वयं वाणी भी ऐसे अवसर का वर्णन करने में सकुचाती है, तब फिर मेरी इस कलम का दोष ही क्या ?

प्रेम विवस मुख आव न बानी।
दशा देखि हर्षे, मुनि ज्ञानी।।

उपरोक्त प्रसंग में जहाँ एक ओर हमें संतों की विलक्षण गौ–सेवा के दर्शन होते हैं, वहीं यह प्रसंग इस बात को भी दर्शाता है, कि संत आसूदाराम साहिब जी जो सेवा करते थे, वह दिखावे से दूर गुप्त रूप से करते थे। यही कारण है, कि वे ऐसी प्रेरणादायी सेवा भी द्वार बंद करके किया करते थे। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है, कि इस घटना के उपरान्त श्री सद्गुरुदेव जी ने दरबार साहिब के भण्डारे की सेवा का कार्यभार भी उन्हें सौंप दिया। इसे वक्त का दुष्चक्र ही कहें, कि जो देश भगत कँवरराम साहिब जी, संत आसूदाराम साहिब जैसे महान् गौ–भक्तों से परिपूर्ण रहा, उस देश में आज गउओं की जो दुर्दशा है, वह किसी से छिपी नहीं है। आज गउओं की स्थिति वस्तुतः बड़ी शोचनीय है। आज हम गउओं के प्रति अपने कर्तव्य से विमुख हो चुके हैं। आज पुनः आवश्यकता है, ऐसी नवचेतना की और ऐसे उपायों की, जो हमारी "माई" के, हमारी गौ–माता के प्रति हमारी प्राचीन हिंदू अवधारणा को पुनजीर्वित करे और हम हिंदुओं को कर्तव्य विमुख होने से बचाये। ताकि हम एक बार पुनः उन महान् गौ–भक्तों का वंशज कहलवाने का गर्व प्राप्त कर सकें।

बोलो,
गोपालकृष्ण भगवान् की जय।
गौ–माता की जय।।

ψΨΨΨψ

अध्याय–9

'नाम–रत्न' से धन्य होना

जैसा कि हम पूर्व में जान चुके हैं, कि पू. श्री आसूदाराम साहिब जी दरबार साहिब की सभी सेवाओं से निवृत्त होकर, रात्रि में प. पू. श्री सद्गुरु साईं सतरामदास साहिब जी की समाधि साहिब के निकट आसन लगाकर सोते थे। वस्तुतः वे वहाँ सोते तो क्या थे, पर यों कह सकते हैं, कि वे यहाँ देर–सबेर कुछ विश्राम ही किया करते थे। भला जिस दिल में विरह की तीव्र वेदना हो, मिलन की तीव्र प्यास–तृष्णा हो, उसके नैनों में नींद कहाँ, मन में चौन कहाँ ? जिस महबूब को उन्होंने वर्षों पहले 'हाजीखान' गाँव में देखा और देखते ही अपना दिल दे दिया, अपना आराध्य इष्ट, सर्वस्व मान लिया, जिस दिलदार के मिलन की बाट उन्होंने वर्षों जोही, वर्षों जिस प्रियतम प्यारे के विरह में दुःसह दर्द सहे, उनसे मिलन की जब घड़ी आयी, तो पाया वे महबूब तो **मुई** (दर्द में मरे आशिक) को विरह में मार आगे चले गये। अरे ! उन्होंने तो दिल से दिल जोड़ा था, फिर वे स्वयं कहाँ चले गये ? भला अब बताओ तो उस साजन की प्रीत किस से कहूँ, जो मुझ मरी को मार कर चल दिया ?

मुई अग मुअल, तैंखे मारे विया।
जीउ जोड़े, पाणु कढाए विया।।
तिनि सजणनि जी सिक कहिंसा सलियाँ।
जे के उथंदे–वेहन्दे यादि पवनि।

(दास)

अस्तु ! संत आसूदाराम साहिब अपने मालिक की समाधि पर रात–रात जाग कर, रो–रोकर उनसे अपने मन की बात कहते–पूछते। वे अपने मालिक को कातर मन से, आर्त मन से,

विरही मन से प्रार्थना करते, विनय करते, पुकार करते, कि हे नाथ ! आप मुझे अपना बनाकर मुझसे दूर क्यों चले गये? मुझसे क्या खता हुई, भूल हुई, जो आप मुझे दरस दिये बगैर ही चल दिये ? मैं आपके दर्शन के लिये हे नाथ ! बहुत अधीर हो रहा हूँ। हे स्वामी ! मुझे दरस तो दे दो। हें सांईं ! मुझे तो पूरा यकीन है, आप तो मेरी पुकार सुनेंगे ही ! भले ही कोई सुने या न सुने।

सचु त 'सचल' सांईंअ जो गा॒ल्हि सची।
मुए त मुहब्बत वारा कन्दा कीन कची।
रग॒ रम्ज इन्हीअ में वियो रुहु रची।
सडि॒ड़ा मालिकु सुणे, बियो सुणे न सुणे।

ईश्वरीय प्रेम अन्योन्याश्रित होता है, पारस्परिक होता है। जितना प्रेम यह जीव ईश्वर से करता है, उससे कहीं अधिक प्रेम वह प्रेमसिंधु ईश्वर, इस जीव से करता है। वस्तुतः ईश्वर और संत तो मात्र प्रेम–ही–प्रेम हैं और वे मिलते भी मात्र प्रेम से हैं।

जिन प्रेम कियो तिन ही प्रभ पायो।
बिन प्रेम किये कछु हाथ न आयो।।

अतः एक रात्रि को सांईं आसूदाराम साहिब को उनके हृदय मंदिर के स्वामी संत सांईं सतरामदास साहिब ने स्वप्न में दर्शन दिये। सच ही कहा है–

'तो जिन्हीं जी तात, तिनि पिंणि तात तुहिंजी।'

अर्थात–् तुम्हें जिनकी चाह और स्मृति है, उन्हें भी तुम्हारी चाह और स्मृति है।'

स्वप्न में सांईं सतरामदास साहिब ने अपने प्यारे बालक पर प्यार की पालोट करते हुए मार्मिक वचन कहे, *''मुझमें और संत कँवरराम साहिब में कोई भेद नहीं। वे मेरा ही स्वरूप और*

साक्षात् रूप हैं। हमारे शरीर भले ही अलग हैं, किन्तु आत्मा एक ही है।''

रात्रि के स्वप्न का स्मरण कर प्रातः उठते ही संत आसूदाराम साहिब ने पू. संत कँवरराम साहिब को पूर्ण सद्‌गुरु भाव से साक्षात् दण्डवत् प्रणाम किया। उस प्रातः सांई आसूदाराम साहिब की मनोदशा का वर्णन कौन कर सकता है? उनका मन आज कितना आनन्द से परिपूर्ण है, शांत है, दुविधामुक्त है। आज उन्होंने अपने स्वामी के स्वप्न में दर्शन पाये है। दर्शन के साथ–ही–साथ उन्होंने अपने सद्‌गुरु के श्री मुख से अपने अंतःकरण की उस दुविधा का समाधान पा लिया है, जो उन्हें 'दरबार' में प्रवेश से लेकर अब तक असमंजस में डाले हुई थी। आज श्री सद्‌गुरु के पावन वचनों से मन का वह असमंजस दूर हो गया। प्रातः उन्होंने अपने सद्‌गुरु के इस पावन दर्शन एवं उपदेश के लिये शत्–शत् अहसान माने और पुनः–पुनः ऐसी ही कृपा की याचना की।

'सचल' सरमस्त ने कुछ ऐसी ही मनोदशा का वर्णन अपने कलाम में इस प्रकार किया है–

रातों डिहाँ रुअण में, हिअड़ो उदासु हुअड़ो।
रहबर आणें पहुंचायो (रसायो), पिरीं पैगाम तुहिंजो।।

वस्तुतः यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा, कि बाल्या–वस्था में संत आसूदाराम साहिब ने प्रथम दर्शन में ही संत सतरामदास साहिब को मन–ही–मन अपना सद्‌गुरु स्वीकार कर लिया था। वे रहिड़की दरबार में आगमन तक, अपने हृदय मंदिर में संत सतरामदास साहिब को सद्‌गुरु के रूप में आराधते रहे। दरबार में पहुँचने के उपरान्त उन्होंने तत्कालीन गद्दीनशीन संत कँवरराम साहिब को पूर्ण निर्मल भाव से अपना परम श्रद्धेय, परम हितैषी एवं परम पूजनीय संत के रूप में स्वीकार किया।

किन्तु संत सतरामदास साहिब के उपरोक्त स्वप्न के पश्चात् उनकी दृष्टि में संत कँवरराम साहिब और संत सतरामदास साहिब में कोई भेद ही न रहा। आज उनके हृदयासन पर संत सतरामदास के प्रतिरूप श्री संत कँवरराम साहिब जी विराजमान हो गये।

इसी प्रकार सांईं आसूदाराम साहिब के हाथ सदैव हाज में अर्थात सेवा में और मन ईश्वर में लगा रहता था। इस प्रकार सेवा करते–करते सात वर्षों का लम्बा समय गुजर गया। दुनिया से बेखबर अपनी लगन में निमग्न यह दर्वेश गौ–सेवा द्वारा अपने सद्‌गुरु सांईं कँवरराम साहिब को प्रसन्न कर चुका था। अब वे भंडारे एवं ड॒वरी साहिब (समाधि साहिब) की सेवा भी करने लगे। इस प्रकार उन्हें सेवा करते–करते चार वर्ष और बीत गये। इस बीच उनके मन में यह बात बड़े वेग के साथ घर कर गई, कि अब गुरुदेव से गुरुमंत्र प्राप्तकर जीवन धन्य करना चाहिये! उन्होंने सुअवसर जानकर एक–दो बार पू. भगत साहिब से गुरु मंत्र हेतु प्रार्थना की। किंतु पू. भगत साहिब ने कहा, *''भाई ! यह कोई हट (दुकान) का सौदा तो नहीं है, जिसे जब चाहे खरीदा जाये ? भाई ! इन बातों से हमारा कोई लेना–देना नहीं है।''* यह सुनकर भाई आसूदाराम साहिब शांत चित्त रहे। इस उत्तर ने उन्हें प्रभु एवं सद्‌गुणों की सेवा, स्मरण के लिये और अधिक प्रेरित किया।

अतः वे और अधिक उत्साह लगन से सेवा–स्मरण में लीन हो गये। शायद सद्‌गुरु उन्हें और अधिक कसौटी पर कसकर खरा उतारना चाहते थे। निष्ठावान् एवं सच्चे सेवक तो स्वयं परिपक्व होने के लिये, कसौटी पर कसने के लिये अवसर ढूँढते ही रहते हैं। लोहा भी जल से धुलने की अपेक्षा, तेज अग्नि की भरपूर तपन से ज्यादा शुद्ध होता है। यह कसौटी का ही परिणाम है, कि बहुमूल्य कोयला (पत्थर) अत्यधिक दबाव सहकर अमूल्य

हीरे का रूप ले लेता है। सीप में बन्द होकर पानी की बून्द बहुमूल्य मोती बनती है। साधारण पत्थर अनेक हथौड़ों और छेनियों की चोट सहकर प्रतिमा बनकर मंदिर में पूज्य बन जाता है। फिर इसमें संशय ही कहाँ, कि यह चेतन जीव जो प्रभु का अंश है, कसौटी पर कसकर महान् बनकर, परम पद को पा जाये?

सामी सहारी, जहिं कसौटी कामिल जी।
पेई पहिंजे घट जी, तहिंखे सुध सारी।
लंघे चढ़ियो लक्ष्य ते, भव–सागर भारी।
समता संचारी, मुखि रखी मौजा करे।

इस वीतराग शिरोमणि की एक विशेष बात, जो इस दास ने अब तक अवसर आने पर कहने के लिये रख छोड़ी थी, वह यह, कि 'ईश्वर के विरह में परम प्यासे इस महान् आशिक को किसी ने जीवन भर कभी किसी भी अवसर पर ठहाका मारकर हँसते हुए नहीं देखा। कितना तीव्र अनुराग होगा लक्ष्य प्राप्ति का, कितनी बड़ी कसौटी है यह !

इस अनन्य सेवक आसूदाराम जी ने चार–पाँच माह बाद फिर अपने स्वामी से 'नाम–रत्न' एवं दीक्षा की प्रार्थना की, किंतु पू. स्वामी अब भी शांत रहे। इतने पर भी मन–ही–मन वे अपने सद्गुरु सांईं सतरामदास साहिब से नित्य निरन्तर यही विनय, यही प्रार्थना किया करते थे।

हउं निर्गुण हारे कोउ गुण नाहीं, आपे तरसु पइओई।
तरसु पइआ मैं रहमत होई, सतगुरु सजणु मिलिआ।।
नानक नामु मिले तां जीवां, तनु–मनु थीवे हरिआ।।

अंततः सद्गुरु ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की। एक रात्रि सांईं सतरामदास साहिब ने संत आसूदाराम साहिब को स्वप्न में

दर्शन देकर फरमाया, *''हमने कँवर को आपके हेतु नाम–रत्न देने की आज्ञा दे दी है।''*

प्रातः होते ही स्वप्न को स्मरण करके महा आनन्द में निमग्न श्री आसूदाराम साहिब ने सद्‌गुरु सांईं कँवरराम साहिब को दण्डवत् प्रणाम किया और पुनः नाम–रत्न प्रदान करने की विनय की। पू. भगत साहिब ने कहा, *''भाई आसूदा, तुम नाम–रत्न पाये बिना हमें छोड़ोंगे नही।''* तब श्री आसूदाराम साहिब ने नेत्रों में जल भरकर रुद्ध कंठ से कहा, *''सांईं इस संसार में आपके सिवाय हमारा है ही कौन ? हम तो आप ही के बालक हैं, आप ही को हमारा भार वहन करना है।''* ये वचन सुनकर पू. भगत कँवरराम साहिब ने अपने सद्‌गुरु के आदेशानुसार श्री आसूदाराम साहिब को 'नाम–रत्न' देकर कृत–कृत्य कर दिया। एक अमूल्य निधि पाकर सांईं आसूदाराम साहिब मानो प्रेम में मतवाले हो गये हैं। उनके आनन्द का कोई पारावार नहीं था। वे मन–ही–मन मग्न हुए गा रहे थे–

पायो री मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सद्‌गुरु,
कृपा कर अपनायो,
खर्चे न खूटे, चोर न लूटे
दिन–दिन बढ़त सवायो। पायो री मैंने–

ψΨΨΨψ

अध्याय–10

निज–गाँव वापसी एवं दरबार–स्थापना

हे ऋषीश्वरों ! सांईं आसूदाराम साहिब जी अपने जीवन के 20 वर्ष अपने सद्‌गुरु के दरबार में, सद्‌गुरु के पास व्यतीत करके, उनकी प्रसन्न मन से कृपा एवं आज्ञा पाकर, आज निज–गाँव की ओर आ रहे हैं। प्राचीन शास्त्रों में गुरुकुल की व्यवस्थानुसार 12 वर्ष तक गुरु की सेवा सुश्रूषा की अवधि तय की है। किंतु सांईं आसूदाराम साहिब जी उससे भी 8 वर्ष अधिक सद्‌गुरु दरबार में सेवा एवं स्वाध्याय करके आज अपने गाँव लौट रहे हैं। आखिर उन्होंने इन 20 वर्षों में वहाँ क्या पाया ? जीवन के वे 20 वर्ष जो अति महत्वपूर्ण माने जाते हैं, अर्थात् युवावस्था के। जिस समय प्रायः हर संसारी जीव अपने उज्जवल भविष्य के लिए एवं अर्थोपार्जन के लिए अथक प्रयास करते हैं। ऐसे समय को वे वहाँ गुजारकर अपनी पीठ पर एक गठड़ी लादे हुए लौट रहे हैं। आखिर वे क्या पाकर लौट रहे हैं? हे मुनीश्वरों ! निःसंदेह यह एक विचारणीय पहलू है। यदि गहराई में जाकर विचार करें, तो हम पायेंगे, कि उन्होंने इन 20 वर्षों में पाया, बहुत कुछ पाया, बहुत–बहुत कुछ पाया। पायी उन्होंने मन की शुद्धि, पायी मन के मलीन आवरण से मुक्ति, पायी संसार के स्वरूप की वास्तविकता, पायी सगे–संबंधियों, धन–धान्य आदि की प्राप्ति की वास्तविकता, कि ये अंतकाल कुछ काम नहीं आते, अंततः वे किस काम के ? रखा उन्होंने इस कटु अनुभव को सदा–सर्वदा अपने पास अपने साथ। पायी सिंध के शिरोमणि संत सतराम साहिब जी की अटूट कृपा और सद्‌गुरु की दुर्लभ सेवा का परम लाभ। पायी सुख–दुख, मान–अपमान, हर्ष–शोक आदि द्वन्दों में समता रूपी स्थिर बुद्धि। पायी पाप–पुण्य, जन्म–मरण के भ्रम से पूर्ण मुक्ति। आह ! और उन्होंने जो

सर्वोत्कृष्ट सर्वोत्तम पाया, वह है नाम–रत्न। नाम, जिसकी महिमा का बखान वेद–पुराण, शास्त्र–स्मृति करते–करते भी थक गये। वही नाम जिससे अंतःकरण की गहराइयों में उतरा जाता है। नाम जो उस परम सत्ता से, परम शांति से, शाश्वत मौन से, साक्षात्कार करा देता है, मिला देता है। मिला भी ऐसा देता है, कि जीवन और ब्रह्म में कहीं कोई भेद ही न रहे, उससे तद्रूप ही कर दे। वह नाम जो अंतःकरण की ऐसी गहराइयों से निकलने पर, इस मायावी संसार का वास्तविक स्वरूप निहारने की दृष्टि देता है। जो कीचड़ रूप इस संसार से, कीचड़ में रहकर कमल की भाँति न्यारा रहना सिखाता है। और–तो–और, इस कीचड़ रूपी संसार को भी ब्रह्मरूप में देखने की दिव्य–दृष्टि, दिव्य–नेत्र, प्रदान करता है–

"दिव्य ददामि ते चक्षुः।" (गीता ११/८)

ऐसा नाम जिसने मृग की भाँति निज वस्तु के लिये वन–वन भ्रमित होकर भटकने से बचाकर, अनन्त ईश्वर को जो कभी कल्पना का विषय था, प्रत्यक्ष पास कर दिखाया।

छो वञों वणकार, हित न गोल्हीं होत खे।
लिकियो कीन लतीफ चवे, बारोचो बपार।।
निवड़ी नैण निहारि, त तोमें डरो दोस्त जो।

अर्थात– हे सखे ! तुम प्रियतम को पाने के लिए बन बन क्यों भटक रहे हो। तुम अन्यत्र नहीं वरन् अपने भीतर निहारो। वह तुम्हारे पास है, तुम्हारे निकट है, तुम्हारे अंदर है। निकट भी इतना, कि तिलमात्र दूरी भी नही।

ते तनिक छिद्र नहीं बीच तेरे,
जिते कख न एक समावदा है।

अर्थात्– बुल्लेशाह कहते हैं, *''हे प्यारे! तेरे और उसके बीच एक तिलमात्र की भी दूरी नहीं है, जिसमें एक तिनका भी समा सके।''* उसी दिव्य नाम ने उन्हें स्वयं में ईश्वर एवं सद्‌गुरु का ऐसा दीदार कराया है, कि वे कह उठे–

'पेही अन्दर पाण में, जो कई रूह रिहाणि।
न को डूंगड़ ॾह में, नकी केचिन काणि।
पुनहू थियसि पाण, ससुई तां सूर हुया।

अर्थात्– *'हे सखी ! जब मैंने अपने भीतर झाँक कर देखा, तो पाया, कि मैं जिस प्रियतम को खोज रही थी, वह कोई और नहीं, वह तो मैं स्वयं ही हूँ। व्यर्थ भ्रम के कारण, मैं विरह पीड़ा सह रही थी।'*

हे विप्रवरों ! जब ऐसे पावन नाम की महिमा के वर्णन का अवसर आया ही है, तो कुछ और भी कहने की आज्ञा चाहूँगा। हाँ, इस अमोलक नाम ने उन्हें नश्वर से शाश्वत् बनाया, दुःख–सुख आदि द्वन्दों से मुक्त कर सत्–चित्–आनन्द स्वरूप बनाया। सत् अर्थात् कभी नाश न होने वाला। चित् अर्थात् सर्वदा चेतन रूप। चेतन भी ऐसा कि स्वयं की मृत्यु तक का साक्षी और आनन्द। आह ! अपना आत्मरूप !! आह ! ऐसा नाम जिसे श्री शिवजी ने अपने अंतःकरण में धारणकर लिया है। ऐसे नाम का वर्णन मैं तुच्छ बुद्धि कहाँ तक करूँ ? जिसे श्री तुलसीदास के अनुसार स्वयं प्रभु भी पूर्णतः वर्णन नहीं कर सकते–

कहौं कहाँ लगि नाम बडाई,
राम न सकहिं नाम गुन गाईं।

ऐसे पावन नाम को पाकर आज सांई आसूदाराम साहिब जी अपने सद्‌गुरु देव को प्रसन्न कर गाँव वापस लौट रहे हैं। सही अर्थों में आज उन्होंने स्वयं का **''आसूदा''** यानी **"सम्पन्न"**

नाम पूर्णतः सार्थक सिद्ध कर लिया है। ऐसे अमोलक नाम को पाकर, वे अपने सद्‌गुरु देव पर बलिहारी होने लगे–

'हउ बलिहारी सतगुरु अपने, जिनि गुप्त नाम परगाझा।'

अब देखें कि वे अपने साथ मात्र एक गठरी पीठ पर लादकर नहीं, किंतु श्री सामी साहिब जी के अनुसार सच्चे सौदागर की भांति पामाल होकर घर लौट आये हैं। ऐसा सौदागर जिसने विश्वास को आधार बनाकर, अपना मन सद्‌गुरु को बेचकर, स्वयं सद्‌गुरु को ही अपना कर लिया। ऐसा सज्जन संसार को स्वप्न की भांति जानकर, किसी से और किसी के रागद्वेष से निर्लिप्त, सदैव निश्चल निरीह अवस्था में रहता है।

सोई सौदागर, जो खेप खटी घरि आयो।
वरतो जहिं वेसाह सां, दिल डई दिलबरु।।
कहिं जो करे कीनकी निहछल निरादरू।।
जाणे सभ् गुजरू, सुपने जो सामी चए।।

सांईं आसूदाराम साहिब जी अपने गाँव लौट आये हैं, बिल्कुल ही सरल भाव से सीधी–सादी वेशभूषा में, बाहर से एकदम सामान्य, किंतु भीतर–ही–भीतर जड़भरत की भाँति पूर्ण चैतन्य से संपन्न हुए। गाँव लौटकर वे सब गाँववासियों से एवं सगे–संबंधियों से प्रेमपूर्वक मिले हैं। सभी को उनके आने की अपार खुशी हुई है और इस खुशी में एकाएक वृद्धि तब हुई, जब सबने यह जाना, कि वे अब यहीं रहेंगे।

संतों ने अपने घर के ऊपरी हिस्से के एक कक्ष में ईश्वर एवं सद्‌गुरु का स्मरण करके, ईश्वर एवं सद्‌गुरुकी मूर्तियाँ विराजमान कीं। साथ ही श्रीमद्‌भागवत्, पंचग्रंथी, श्री सामी साहिब के श्लोकों की पुस्तक अपार श्रद्धा से स्थापित की। इस प्रकार यों कहें, उन्होंने **स्वांतः सुखाय**, अर्थात् अपने आप के स्वाध्याय

एवं अपनी आराधना के लिये एक पूजा कक्ष बनाया, जिसने शीघ्र ही उनकी भक्ति, शक्ति, श्रद्धा के फलस्वरूप दरबार का रूप धारण कर लिया है। अब वहाँ पर नित्य प्रति प्रातः–सायं सत्संग–सुधा बहने लगी।

भगवत् प्रेमीजन इस सत्संग सरोवर में स्नान करने और अपने तन–मन–धन के कष्टों को मिटाने, धीरे–धीरे जमा होने लगे। वे सब शीघ्र ही संत आसूदाराम साहिब जी की मिलन सरिता, सरल एवं विनम्र स्वभाव तथा संत–वृत्ति से अत्यन्त प्रभावित होने लगे। दिनों–दिन उनके नाम का प्रताप फैलने लगा। संयोग से कुछ समय पश्चात् संत आसूदाराम साहिब जी की पू. माता श्री का देहान्त हो गया। इस अवसर पर प. पू. सद्‌गुरु सांईं कँवरराम साहिब जी वहाँ पधारे। उन्होंने इस अवसर पर वहाँ की साध संगत एवं प्रेमी जनों में सांईं आसूदाराम साहिब जी के प्रति अगाध श्रद्धा–भक्ति देखी। यह देख उन्होंने अपने लाड़ले शिष्य आसूदाराम साहिब जी को किसी स्थान विशेष पर विधिवत् दरबार स्थापना की आज्ञा की। ईश्वर की महान् कृपा से शीघ्र ही पन्नो आकिल, सिंध, पाकिस्तान में सन् 1940 में एक नयी दरबार की नींव रखी गयी। लक्ष्मी तो संतों की दासी कही गयी है। उसने भी दरबार स्थापना के अवसर पर सेवा का सौभाग्य पाकर स्वयं को धन्य किया। साथ ही सब प्रेमी एवं भक्तजनों ने भी इस अवसर पर तन–मन–धन से समर्पित सेवा अर्पित की। शीघ्र ही नयी दरबार 1942 में बनकर तैयार हो गई। जिस भूमि पर दरबार स्थापित की गयी, वह उनके पूर्वजों की थी। संत सच्चे गौ–भक्त तो थे ही, अतः दरबार में एक ओर गौ–शाला तथा अतिथि–कक्ष स्थापित किया गया।

समय के साथ संत आसूदाराम साहिब एवं उनके रूहानी अमानत के वारिस परम पुरूषार्थी श्री सांईं चाँडूराम साहिब जी की इच्छा एवं प्रताप से दि. 15 जून 1977 में भारत के लखनऊ

शहर में भी **शिव शांति आश्रम** नाम से नयी दरबार की नींव रखी गयी, जो 3 सितम्बर 1979 को बनकर तैयार हुई। दोनों दरबारों ने क्रमशः पाकिस्तान एवं भारत के कोने–कोने में अपनी पहचान स्थापित की है। आज दोनों केन्द्र सिन्ध एवं भारत में अध्यात्म एवं मानव सेवा के प्रतीक बनकर सामने आये हैं। जिस गति से आज उनकी सेवाएँ जन–मानस को प्राप्त हो रही हैं, उन्हें देखते हुए यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी, कि शीघ्र ही इससे जन–जन लाभान्वित होगा। हम सब की ईश्वर के द्वार पर यही प्रार्थना है, कि वे प. पूज्य संत सांईं चाँडूराम साहिब जी को दीर्घ आयु एवं उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करें। जिससे वे हम सब को भक्ति एवं ज्ञान रूपी अमृत पिलाते रहें, जिसे पान करके, हम पतित जीव भी पावन होकर, अपने मनुष्य जन्म को सफल बना सकें।

ψΨΨΨψ

अध्याय–11

दिनचर्या

किसी भी संत के जीवन का सबसे प्रमुख लक्ष्य ईश्वर का स्मरण, भजन, चिंतन होता है। चाहे वह आत्म–अभ्यास के रूप में हो अथवा परम पावनी भक्ति के रूप में। सच्चे संतजन निष्कपट रूप से मात्र ईश्वर के निमित्त जीवन व्यतीत करते हैं। उठते–बैठते, सोते–जागते आठों पहर उन्हें एक मात्र परमेश्वर की चाह एवं चिंतन रहता है। ऐसे निर्मल संत का जीवन स्वयं में तो धन्य है ही, किन्तु इस संसार के बीच में फँसे हुए अनेकानेक जीवों के लिये भी कल्याणकारी होता है। वे चाहे संसार से कितने भी छिपे रहें, किन्तु भक्ति के प्रताप के कारण प्रकट हो ही जाते हैं। सुखमणी साहिब में श्री गुरु अर्जुन देव जी महाराज फरमाते हैं–

आठ पहर जनु हरि हरि जपै,
हरि का भगतु प्रकट नहीं छपै।
हरि की भगति मुकति बहु करै,
नानक जन संगि केते तरे।।

ऐसे ही एक सच्चे संत थे बाबा आसूदाराम साहिब जी। जब जगत के विवेकशून्य लोग मोह रूपी मदिरा पीकर, विषयों के पीछे पागल से, गहन निद्रा में सोये रहते हैं–

"पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरा मुन्मत्तभूतं जगत्।"

उस समय अर्द्धरात्रि को, जब आकाश में तारे झिलमिलाते थे, श्रीराम के प्यारे, श्री सद्‌गुरु के प्यारे संत आसूदाराम साहिब जी प्रभु के लिये जागते और उनका स्मरण करते थे।

भिन्नी रेनड़ीए चमकनि तारे,
जागहि संत जना मेरे राम पियारे।

वे अमृतवेला में शैय्या का त्याग कर, दिशा आदि से निवृत्त होकर स्नान करते और मुख से श्री गुरुग्रंथ साहिब की इस पावन वाणी का जाप करते–

रामदास सरोवर नाते, सभि उतरे पाप कमाते।
निर्मल होई करि इसनाना, गुरु पूरै कीने दाना।।
'सभि कुसल खेम प्रभि धारे,
सही सलामति सभि थोक उबारे।
गुरु का सबदु विचारे।। रहाउ ।।
साध संगि मलु लाथी, पार ब्रह्मु भइओ साथी।
नानक नामु धिआइआ, आदि पुरख प्रभु पाइआ।।

स्नान आदि से निवृत्त होकर संत अपने कक्ष में आते और वहाँ श्री जपुजी साहिब एवं गुरुवाणी में से अन्य पाठ किया करते थे। तत्पश्चात् वे यकतारे पर राग रामकली एवं प्रभाती, भैरव, आशा, धनासरी और बिलावल पर सदैव कीर्तन किया करते थे। इस समय संत पूर्ण भावावस्था में रहते थे, वे अपने मन से समस्त संसार को बाहर करके, एक मात्र ईश्वर को, अपने सद्‌गुरु देव को निकट जानकर, उन्हीं को प्रसन्न करने हेतु, आलाप अलापते थे। उनके भावों में पूर्ण विनय भाव रहता था। विनय भाव भी ऐसा, जो हृदय तो क्या, पत्थर को भी पिघला दे। उस समय ऐसा लगता था, मानो सर्वव्यापक प्रभु परमात्मा साकार रूप धारण करके, उनके पास बैठकर, उनका कीर्तन श्रवण करते थे। जैसे भगवान् श्रीकृष्ण श्री सूरदास जी का कीर्तन श्रवण किया करते थे। वे छत्तीस राग–रागनियों में निपुण थे। ग्रीष्मकाल में संत बाहर आँगन में एवं शीतकाल में भीतर कक्ष में बैठकर आसा–दी–वार का पाठ किया करते थे। इसके बाद ये वेरागी महापुरुष इसी वैराग्य और भक्ति भाव में तल्लीन हुए ऊपरी कक्ष में आकर श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी की परिक्रमा करते और चँवर झुलाते थे। इस समय वे अपनी अध्यात्म की गहराइयों में पूर्णरूप से डूबे रहते थे। और इसी भावावस्था में सराबोर हुए, वे श्री गुरु

ग्रंथ साहिब जी से वचन साहिब का पठन करते थे। करीब आधा–पौना घन्टा वे वचन साहिब पठन करते थे। पठन तो क्या करते, मानो वे एक–एक शब्द को पीकर, अपने हृदय की गहराइयों में आत्मसात् करते और तत्पश्चात् पूर्णरूपेण तन्मय और तल्लीन हुए श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी के हजूर में बड़ी देर तक खामोश बैठे रहते थे। मानो वे पठन किये हुए वचनों को शोधते हों। उनके सार का विचार किया करते हों।

'शोधत शोधत – शोध तत् वीचारीया।

ऐसे में उनके हृदय में अमृत की धारा बहा करती थी। जिसे वे सुन्न भाव से पीया करते थे।

'रिमझिम बरसे अमृत धारा, मन पीवे सुन्न सबद वीचारा।'

तब तक काफी समय आगे निकल चुका होता था, पास–पड़ोस एवं दूर–दराज की कई माताएँ नाना प्रकार की मनः कामनाएँ लिये संतों की शरण आ बैठतीं। ईश्वरीय भावों में तर (सराबोर) संत बाबा आसूदाराम साहिब जी हाजरा–हुजूर, जाहिरा–जहूर श्री गुरुग्रंथ साहिब जी पर हाथ रखकर, उनकी मनःकामनाएँ पूर्ण करने हेतु, मन–ही–मन अरदास करते और उन माताओं को शुभाशीष देते। इसके पश्चात् संत नीचे आते एवं अल्पाहार लेकर कुछ समय के लिये विश्राम करते थे।

विश्राम के पश्चात् संत मेहमानों एवं घर–परिवार की सार–सुध लेते थे और सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। जिन दिनों संत जतोइन रहते थे उन दिनों वे अक्सर सौदा इत्यादि खरीदने पन्नो आकिल जाया करते थे, क्योंकि उनके अन्य बन्धुजन व्यवसाय के कारण कराची रहते थे। अतः घर–परिवार की देखभाल संत स्वयं ही किया करते थे। वे मार्ग में आते–जाते पूरा समय ईश्वर के ख्यालों में निमग्न रहते थे। कभी वे वाहेगुरू के नाम में लीन, तो कभी वे कण–कण में

करतार की कुदरत को निहारा करते थे। कभी वे आकाश के चमत्कार विचारते, तो कभी पाताल को विचारते–विचारते, वे सुबहान पर कुरबान जाते थे।

सुबहान तेरी कुदरत को कुरबान।
पानी ऊपर बिछा बिछौना,
तम्बू तना आसमान।।
सुबहान तेरी कुदरत को कुरबान।

वे भावातिरेक में आकर फूलों के एक–एक रंग में, सुगंध में, पत्तों की आवाज में, उसी सिरजनहार के राज को, राग को पहचान लेते थे। मानों उनका रोम–रोम ईश्वर का इस प्रकार से गान कर रहा हो –

प्रभु–सभ कनि तुहिंजी साराह, कुदरत वारा, ओ कुदरत वारा।
गुलनि अंदर सुरहाणि भरी थी, मोतिनि सां महराण भरी थी।
ओ हीरा–लाल–हजरा, ओ कुदरत वारा, कुदरत वारा।
जहिं वणनिं ते वाउ अचे थो, पन–पन मां परलाउ अचे थो।
ओ छिम–छिम जा छिमकारा, ओ कुदरत वारा, कुदरत वारा।।
मुल्क मिड़ियोई मंदर आहे, आगो सभजे अंदर आहे।
डहिनि मंझि दुलारा, ओ कुदरतवारा, कुदरतवारा।।
साह अंदर जो साहु खज थो, "बेवस" सांई नादु वजे थो।
मोहन मुरलीअ वारा, ओ कुदरतवारा कुदरतवारा।।

अस्तु, पन्नो आकिल आकर वे सर्वप्रथम श्री मसन्द साहिब दरबार में श्री गुरुग्रंथ साहिब जी से वचन साहिब लेते थे। तत्पश्चात् सौदा आदि खरीदकर, गठरी बाँध, सिर पर लादे आते थे। एक ओर पैदल लम्बा सफर, दूसरी ओर मौसम की ठंड या गर्मी, किन्तु ये महात्मा सारा मार्ग सतनाम का ध्यान–जप करते हुए अग्रसर होते रहते थे। सिर पर बोझ है तो क्या ? भला जिसने वैराग्य का इतना भारी बोझ सिर पर उठा रखा हो, उसके लिए यह तुच्छ बोझ क्या है? वे तो हर स्थिति में सम थे जैसे जड़भरत। (कथा–प्रसंग) कच्छ प्रांत का राजा रहूगण कपिल मुनि

के आश्रम में ज्ञान प्राप्ति हेतु जा रहे हैं। वे पालकी में सवार हैं। चार सेवक पालकी लिये जा रहे हैं। एक सेवक भाग गया। जंगल में खोजने पर जड़भरत जी मिले। वे ईश्वर–चिंतन में लीन थे। उनसे पालकी उठवाई गई। वे धरती पर नजर डालते हुए जा रहे थे, कि कहीं कोई जीव मर न जावे। जहाँ जीव दीखता है, वहाँ वे उछल जाते हैं, राजा उन्हें डाँटते, *''तुम मोटे–तगड़े हों, तुमसे वजन नहीं उठता ?''* जड़भरत जी शांत चित्त रहे। अधिक डाँटने पर आज जीवन में पहली बार जड़भरत जी राजा से बोले, *''हे राजन् ! आपने कहा, कि मैं मोटा–तगड़ा हूँ। यह शरीर का धर्म है, मैं शरीर नहीं, शरीर का साक्षी हूँ। और आपने कहा तुमसे वजन नहीं उठता, तो हे राजन्, वजन नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। ज्ञानी पुरुष जगत् को असत्य मानते हैं, जब जगत ही असत्य है, तो फिर वजन कहाँ से सत्य होगा?''* राजा जड़भरत को देखते ही रह गये, वे पहचान गये, कि यह कोई तत्व ज्ञानी संत है। वे क्षमा याचना करने लगे।

इसी प्रकार संत आसूदाराम साहिब जी भी सिर पर भार से बेखबर अपने स्वानन्द में लीन हुए चले आ रहे हैं। ऐसे विरक्त, साधु, सन्यासी, संत ही परमहंस हैं। जो मन से सदैव ईश्वर का नाम स्मरण करते हैं और नेत्रों से सर्वत्र ब्रह्म दर्शन। ऐसे परमहंस स्वयं तो तर ही जाते हैं, साथ ही अनेकों को तार लेते हैं। श्री गुरु अर्जुन देव जी महाराज ऐसे परमहंसों के लिये फरमाते हैं–

उरिधारे जा अंतरि नामु, सरब में पेखै भगवान।
निमख निमख ठाकुर नमस्कारै,
नानक ओहु अपरसु सगल निसतारे।।

इसी प्रकार जब संतों ने अपनी दरबार पन्नो आकिल में स्थापित की तब प्रायः वे दोपहर के भोजन आदि से निवृत्त होकर कुछ देर विश्राम किया करते थे। वे विश्राम के पश्चात् ठंड के दिनों में चार बजे एवं गर्मी के दिनों में पांच बजे उठा करते थे।

श्री नामदेव हरदासमल जी, संत श्री आसूदाराम साहिब जी की दिनचर्या के प्रति बतलाते हैं, कि अक्सर गर्मी के दिनों में भाई रामचन्द्र जी दरबार में मेहमानों एवं सेवकों को हवा करने हेतु लगी झल्ली खींचा करते थे। उन दिनों दरबार साहिब में पंखें आदि नहीं थे। अतः जब कभी भाई रामचन्द्र जी झल्ली खींचने के लिये अनुपस्थित रहते थे, तब सदा दयाल संत सांईं आसूदाराम साहिब जी स्वयं झल्ली खींचते थे और अपने भक्तों को, सेवकों को गर्मी से राहत पहुँचाते थे। ऐसे ही सदा दयाल संतों के लिये, जिनके हृदय में प्राणी मात्र के लिये प्रेमभाव है, सेवा भाव है, परहित भाव है, संत श्री तुलसीदास जी कहते हैं—

परहित बस जिन्ह के मन माहीं।
तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।

इसी प्रकार सायंकाल को संत दरबार में संगत के साथ विराजते, सब की खुशहाली ज्ञात करते, उनके सुख—दुःख में आत्मीयता प्रकट करते और उन्हें ईश्वर के प्रति प्रेरित करते। वे अपने भक्तों को बातों—ही—बातों में सरल भाव से, किन्तु गंभीर सदुपदेश किया करते थे। उनके शब्दों में अजीब शक्ति थी, जो सुनने वालों के हृदय में ईश्वर के प्रति अपार उत्साह एवं उमंग उत्पन्न कर देती थी। तत्पश्चात् वे रहिरास साहिब का पाठ करते और वहाँ कीर्तन एवं सत्संग के पश्चात् ऊपर चलकर, सबके साथ स्वयं झाँझ बजाकर, आरती किया करते थे। अब संत रात्रि का आहार ग्रहण करते। इसके उपरान्त आरम्भ होता था रात्रिकालीन सत्संग का एक और दौर। जिसमें संत सांईं आसूदाराम साहिब जी सर्वसाधारण संगत के साथ बैठकर सुखमणी साहिब, श्री सामी साहिब जी के श्लोक, कथा वार्ता एवं अन्त में अपनी सुमधुर वाणी में प्रभु की स्तुति में गान करते थे। इस समय दरबार में मानो अमृत की वर्षा हुआ करती थी, जो साध—संगत के रोम—रोम को हरि—रस से सींच देती थी। इस समय का सुख एवं आनन्द का वर्णन कदापि नहीं किया जा

सकता। सत्संग के सुख की महिमा ही ऐसी है। श्री तुलसीदास जी इस सुख का वर्णन करते हुए कहते हैं–

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत संग।।

अर्थात्– स्वर्ग और मुक्ति का सब सुख मिलकर भी, सत्संग के एक क्षण के सुख के समान नहीं हो सकता है।

इस समय रात्रि के लगभग 11 बजने को आते, भक्तजन संतों को चरण वंदन कर विदा लेते। इसके पश्चात् संत सांईं आसूदाराम साहिब जी रात्रि विश्राम के लिये शैय्या पर आते थे। वैसे संतों के विश्राम का एक गूढ़ रहस्यमय पक्ष यह है, कि वे निद्रा में भी जागते रहते हैं और उनका नाम–स्मरण निद्रा में भी चलता रहता है। वे अपने प्रभु परमात्मा से सदा ही मिले रहते हैं–

'राम पिआरे सदा जागहिं नाम सिमरहि अनदिनो।
चरण कमल धिआनु हिरद,
प्रभु बिसरत नाहीं इक खिनों।।

उनके विश्राम का दूसरा पक्ष यह है, कि विश्राम तो वास्तव में संतजन ही करते हैं और वे ही विश्राम के अधिकारी भी हैं। जो अपने काम से पूर्णतः उपराम हुये हैं, वे ही तो विश्राम कर पाते हैं। जहाँ संकल्प शेष है, कार्य शेष है, प्रभु से मिलन शेष है, वहाँ विश्राम कहाँ? जहाँ कल के लिये संकल्प शेष नहीं है, द्वेत शेष नहीं है वहीं तो सच्चा विश्राम है। बुलेशाह जी कहते है

'अठे पहर विश्राम, नहीं काम कोई।
दुई को ज्ञान की बाहि जलाइ के जी।'

इस प्रकार हम देखते हैं, कि संत बाबा आसूदाराम साहिब जी का प्रातः से रात्रि पर्यन्त प्रत्येक क्षण, ईश्वर के

स्मरण–भजन–कीर्तन में व्यतीत होता था। वे हर समय मात्र ईश्वर एवं ईश्वर के पुनीत कार्यों को लिये रहते थे। श्री गुरुनानक देवजी ऐसे सच्चे संतों के लिए फरमाते हैं–

जिह घट सिमरनु राम को, सो नरु मुकता जानु।
तिहि नर हरि अंतर नहीं नानक साची मानु।।

इसी प्रकार भरतजी के पूछने पर, श्री रघुनाथ जी अपने प्राणप्रिय भाई से ऐसे ही सच्चे संतों के लक्षणों का वर्णन करते हुए, श्री रामचरित मानस में कहते हैं–

विगत काम मम नाम परायन,
सांति बिरति बिनती मुदितायन।
सीतलता सरलता, मयत्री,
द्विजपद प्रीति धर्म जनयत्री।।
ए सब लक्षण बसहिं जासु उर,
जानेहु तात संत सन्ततपुर।

अर्थात् – हे भरतजी ! जो कामनाओं से रहित होकर मेरा नाम स्मरण करते हैं, वे शांति–वैराग्य–नम्रता और प्रसन्नता के धाम होते हैं। उनमें शीतलता–सरलता–मित्रता और ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम होता है, जो धर्म को उत्पन्न करने वाला है। हे भाई ! ये सब लक्षण जिनके हृदय में बसते हैं, उन्हें आप सच्चा संत जानना। अतः हम संसारी जीवों के लिये यही हितकर है, कि हम छल–कपट एवं सयानापन त्यागकर, सदैव ऐसे पावन संतों की सेवा एवं शरण में रहें और जन्म–मृत्यु से छुटकारा पाकर, प्रभु परमात्मा से एक होकर कृत–कृत्य हो जावें।

अवर सिआनप सगली छाडु,
तिस जन की तू सेवा लागु।
आवनु जानु न होवी तेरा,
नानक तिसु जन के पूजह सद पैरा।।

अध्याय–12

विवाह

श्री रामचरितमानस में मानस मर्मज्ञ श्री कागभुशुण्डि जी, पक्षी राज गरुड़ जी से कहते हैं–

"हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहंगेस।"

अर्थात– हे पक्षीराज ! प्रभू की माया बड़ी बलवान है। इसे सहज ही पार नहीं किया जा सकता है।

श्रीमद् भगवद् गीता में भगवान श्री कृष्ण कहते हैं–

"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।" (७/१४)

'मेरी अति अद्भुत त्रिगुणमयी योगमाया बड़ी दुस्तर है, इसका कारण एक तो यह मन बहुत अद्भुत, चंचल, माया में सहज ही लिप्त रहनेवाला है। मन पर पाँच विकारों काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार का एकाधिकार–सा है। ऐसे में ईश्वर की भक्ति, ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग तो मानो तलवार की तेज एवं कठिन धार पर चलने के समान है।

भक्ति दुहेली राम की जैसे खंने धारा।

इसी प्रकार –

ज्ञान पंथ कृपान कै धारा।

और ईश्वर की भक्ति के पथ में माया का सबसे प्रबल, सशक्त और लुभावना साधन यत्र–तत्र–सर्वत्र विचरण करने वाला स्त्री रूप, जो ईश्वर अनुरागियों के लिये अनेक बार बड़ी बाधा उत्पन्न करता है। कहा भी है–

नारी नसावै तीन गुण, जो नर पासे होय।
भक्ति, मुक्ति, निज ध्यान में बैठ न सके कोय।।

अर्थात्– इसी मोह माया की मृग मारीचिका में यह पूरा संसार भ्रमित होकर, दैव–दुर्लभ अमोलक मनुष्य जन्म व्यर्थ ही नष्ट कर रहा है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त, सुख के पीछे पागल यह जीव, अंततः सच्चे सुख से वंचित रहकर, माया के कारण, घोर दुःख को ही प्राप्त करता है। इस प्रबल माया एवं इन दुर्जेय पाँच शत्रुओं से छूटने का मात्र एक ही उपाय है भगवत्–कृपा।

अतिशय प्रबल देव तउं माया,
छुटई राम करहु जब दाया।

और श्री रामजी की कृपा प्राप्त करने का जगत में प्रत्यक्ष साधन है, संत का, सद्गुरु का संग और उनकी अहेतु महान कृपा, जो उनकी सेवा, सतसंग और वचनों के अनुसरण करने से प्राप्त होती है।

काम क्रोध अरु लोभ मोह, बिनसि जाइ अहंमेव।
नानक प्रभ सरणागती, करि प्रसादु गुरुदेव।।

इसी प्रकार–

राम कृपा नासहिं सब रोगा, जौ एहिं भांति बने संयोगा।
सद्गुर वैद वचन विस्वासा, संजम यह न विषय कै आसा।।

अर्थात्– संयोग से यदि सद्गुरू रूपी वैद्य मिल जाये और यह जीव विषयों की आशा त्यागकर, संयम धारण करे, साथ ही उनके वचनों पर दृढ़ विश्वास रखकर, उनके बतलाये मार्ग पर चले, तो श्रीराम जी की कृपा से ये मायाकृत रोग मिट सकते हैं।

अब जैसा कि हम पूर्व में जान चुके हैं, कि संत आसूदाराम साहिब जी ने अपने समर्थ सद्गुरु की शरण में खूब वैराग्य पाया था और चूंकि जन्म से ही उनमें वैराग्यवृत्ति प्रधान थी, अतः भरपूर यौवन में भी उन्होंने इस वृत्ति को सद्गुरु कृपा से साधे रखा। इसी वृत्ति विशेष के कारण उन्होंने कभी गृहस्थ जीवन में प्रवेश

करने का विचार तक ही नहीं किया। इस प्रकार वे अपना पूर्ण जीवन अविवाहित ही गुजारना चाहते थे।

चूँकि उनके परम गुरु संत बाबा खोताराम साहिब, सद्गुरु संत सतंरामदास साहिब एवं सर्व गुण निधि संत सांई कँवरराम साहिब गृहस्थी थे। उन्होंने संसार में आकर, अपने–अपने गुरु की आज्ञानुसार, गृहस्थ धर्म में प्रवेश करके, दोनों कार्य सँवारे थे। उन्होंने अपने गुरुजनों की स्पष्ट आज्ञानुसार अपना जीवन यापन, अपने पसीने की कमाई से किया तथा भजन से प्राप्त समस्त धन–दौलत मात्र पुण्य कार्यों में खर्च की।

इस प्रकार एक ओर तो उन्होंने गृहस्थ जीवन के सब कर्तव्य–कर्मों का पालन कर, महान् व्यवहारिक आदर्श प्रस्तुत किये, वहीं दूसरी ओर प्रभु परमात्मा की अखण्ड भक्ति कर, परम पद को प्राप्त कर, सांसारिक जीव के लिये ऐसा मार्ग प्रशस्त किया, जिस मार्ग का अनुसरण कर, वह जीवित अवस्था में ही मुक्ति का परम लाभ प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार उन्होंने स्वयं का एवं जगत के लाखों प्राणियों का कल्याण किया।

उपरोक्त सभी संतों की यह शास्त्रोक्त धारणा थी, कि गृहस्थ जीवन काम, क्रोध, लोभ, मोह, ममता आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने का एक सुरक्षित मार्ग है। जीवन अपने गृहस्थ धर्म के सब कार्यों का भली–भाँति पालन करते हुए, इन दुर्जेय शत्रुओं को शनैः–शनैः विवेक द्वारा वशकर, उन पर जीत हासिल कर लेता है। वैसे भी शास्त्रों ने सब आश्रमों में, गृहस्थ आश्रम को सुरक्षित एवं श्रेष्ठ माना है। जिस प्रकार प्राणी मात्र का आश्रय वायु है, उसी प्रकार चारों आश्रमों के लोग गृहस्थ आश्रमियों पर ही आश्रित हैं।

यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान चांवहम्।
गृहस्थेनैव धार्यते तस्माज्जयेष्ठाश्रमो गृही।।

श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने भी, अपने–अपने वर्णाश्रम धर्म के सम्पूर्ण कर्तव्यों का पालन करते हुए, ईश्वर प्राप्ति सुनिश्चित की है–

स्वे–स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः। (गीता१८/४५)

अतः गृहस्थ जीवन में भी जीव सावधान चित्त होकर, स्वधर्म का पालन करते हुए, ईश्वर–प्राप्ति और जीवन–मुक्ति हासिल कर सकता है। इस प्रकार जब संत आसूदाराम साहिब जी के समर्थ सद्गुरुओं को अपने योग्य शिष्य का गृहस्थ धर्म में प्रवेश कराना उचित जान पड़ा, तब उन्होंने उन्हें विवाह का आदेश दिया।

हुआ यों कि एक रात्रि संत आसूदाराम साहब अपने गुरुदरबार में सेवा से निवृत होकर सो रहे थे, कि परम गुरुदेव संत सतरामदास साहिब ने उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर कृतार्थ किया और आज्ञा दी, कि वे अब विवाह कर गृहस्थ धर्म का पालन करें। प्रातः उन्हें स्वप्न की याद आयी, किन्तु उन्होंने इसे महज स्वप्न ही समझा और सहज रूप में लिया। इसके पश्चात् एक दिन स्वयं सद्गुरु सांई कँवरराम साहिब ने उन्हें विवाह करके, गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की स्पष्ट आज्ञा दी और ऊपर वर्णानुसार गृहस्थ–धर्म की महिमा समझायी। इसे भी उन्होंने इतना महत्व नहीं दिया, जितना देना उचित था, क्योंकि एक प्रकार से वे अपनी वैराग्यवृत्ति के कारण, इस प्रपंच जाल से मुक्त रहना चाहते थे।

प्रायः यह देखा गया है, कि साधक साधना काल में जिस साधना को बहुत समय तक साधता आया है, उसे सहज ही त्यागने को उसका मन शीघ्र ही तैयार नहीं होता है। इसका एक प्रमुख कारण यह है, कि उसे लक्ष्य की प्राप्ति की धारणा, उसमें लगाये रहती है।

अंततः जब समर्थ संतों ने यह देखा, तो उन्होंने श्री आसूदारामजी को स्पष्ट आदेश दिया। एक रात्रि समर्थ संत सतरामदास साहब पुनः उनके स्वप्न में आये और कहा, *''जैसा हमने एवं कँवर ने आपको विवाह करके, गृहस्थ–धर्म का पालन करने की आज्ञा दी है, आप वैसा ही करें।''*

अपने सद्‌गुरु का इस प्रकार स्पष्ट आदेश पाकर, संत आसूदाराम साहिब जी ने तत्काल उसे शिरोधार्य किया और मन–ही–मन प्रार्थना की–

''प्रभु पित मातु सुहृदय गुरुस्वामी,
पूज्य परम हित अंतर्यामी।
सील सु साहिबु सील निधानु,
प्रनतपाल सर्वग्य सुजानु।''

अर्थात्– हे प्रभु! आप मेरे माता, पिता, मित्र, गुरु, स्वामी, पूज्य परम हितैषी और अंतर्यामी हैं। आप सरल चित्त, उत्तम स्वामी और शील निधान, शरणागत वत्सल, सर्वज्ञ और सुजान हैं। यह दास आपका अनन्य सेवक है। आप अपने दास को जैसी आज्ञा देंगे वही हमें शिरोधार्य है।

एक बात यहाँ उल्लेखनीय है, कि ऐसा अनेक संतों के जीवन–दर्शन में पढ़ने को मिलता है, जब उन्हें गुरुदेवों ने इस प्रकार का आदेश दिया है, जिससे उन्होंने संसार त्याग की अपनी विचारधारा छोड़कर, अपने गुरुदेवों के आदेशों का पालन किया है। स्वयं परब्रह्म परमात्मा प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने संसार के प्रति वैराग्य के तीव्र होने पर सर्व त्याग का विचार किया था, ऐसे में उनके सद्‌गुरु वशिष्ठ जी प्रभु श्री राम जी को ज्ञान का उपदेश करते हुए फरमाते हैं, *''हे रामजी ! संसार यदि ईश्वर से भिन्न है, तो इसका त्याग करो।''* इस प्रकार अपने गुरुदेव से तत्व बोध पाकर, प्रभु श्री रामजी ने संसार त्याग की इच्छा त्याग कर, संसार के सब कर्तव्य कर्मों को अनासक्त भाव से करके,

उच्च–से–उच्च आदर्श प्रस्तुत किये। जिन्हें सब ऋषियों–मुनियों ने अनुकरणीय रूप से स्वीकारा है।

इस प्रकार संत आसूदाराम साहिब जब रहिड़की से अपने गाँव जतोइन आये, तो उन्होंने उपरोक्त सब वृतान्त अपने चाचा श्री गिन्डलमल जी को कह सुनाया तथा कहा, कि वे अपने सद्‌गुरु के आदेश का पालन करने हेतु तत्पर हैं।

'आज्ञा सम न सु साहिब सेवा।'

उनके चाचा श्री ने उन्हें आश्वासन दिया और कहा, कि यदि संतों की ऐसी ही आज्ञा है, तो शीघ्रातिशीघ्र रिश्ते के लिये उपाय करते हैं।

विवाह का अवसर तो अपार हर्ष का विषय होता है। उस पर भी, ऐसे वीतरागी संत के विवाह का अवसर ! निश्चय ही सबके लिये परम उत्साह और आनन्द का अवसर था। स्वर्गीय श्री सेवाराम जी बतलाते थे, कि संयोग से इन्हीं दिनों संत आसूदाराम साहिब 'गेमड़े' नामक गाँव गये। वहाँ संतों के प्रेमियों के बीच, संतों के विवाह की चर्चा छिड़ी। सभी प्रेमियों ने यह जानकर प्रसन्नता व्यक्त की और ऐसे अपूर्व अवसर पर सेवा का लाभ उठाने का निश्चय किया। संत श्री का रिश्ता ढूढने का काम प्रेमियों को सौंपा गया। शीघ्र ही 'रेढी' नामक गाँव निवासी भाई मोतीराम जी की योग्य कन्या सौ. बैंसरबाई का चयन संत श्री आसूदाराम साहिब जी के लिये किया गया। भाई मोतीराम जी भी संत श्री कँवरराम साहिब जी के श्रद्धालु शिष्य थे। जब भाई मोतीराम जी से इस रिश्ते के लिये चर्चा छेड़ी गई, तो वे अति प्रसन्न हुए और अपनी कन्या के लिये ऐसा सुयोग्य वर पाकर, स्वयं को धन्य अनुभव करने लगे। शीघ्र ही रिश्ता तय हो गया और लगन–मुहुर्त पूर्व में निकलवाये गये, पर सद्‌गुरु सांई कँवरराम साहिब अपने भजन के कार्यक्रमों के कारण व्यस्त थे। अतः उनकी अनुकूलता को विचार में रखकर छः माह बाद सन् 1934 में लगन निश्चित किया गया।

विवाह के अवसर पर सिंध के महान् संत भगत कँवरराम साहिब उपस्थित थे। चारों ओर खुशियाँ ही खुशियाँ थीं। सब रीति–रिवाजों के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। सदा सम और तृप्त रहने वाले दुल्हे राजा और सुन्दर एवं सुशील वधू की सुन्दर मनोहर जोड़ी का वर्णन नहीं किया जा सकता है –

बरनि न जाय मनोहर जोड़ी,
शोभा बहुत थोड़ि मतिमोरी।

विवाह के उपरान्त वर–वधू ने वहाँ उपस्थित सब बुजुर्गों और सद्गुरुदेव के पावन चरण स्पर्श किये। अपने योग्य शिष्य की शादी के अनुपम अवसर पर अति प्रसन्न सद्गुरु संत कँवरराम साहिब ने वहाँ उपस्थित समस्त सगे–संबन्धियों एवं भक्तजनों को बधाईयाँ दी। तत्पश्चात् वर राजा को शादी की बधाइयाँ दी, फिर वधू को भी शादी की बधाइयाँ दीं। संतों के इस प्रकार वधू को बधाइयाँ देने पर सारे बाराती एवं आमंत्रित सज्जन खुशी से हँस दिये और संतों से कहने लगे, *''सांई ! आज आपने वधू को शादी की बधाइयाँ देने की नई रस्म पैदा की है।''* इस पर संत बोले– *''भाई ! जिस वधू को शिव–स्वरूप पति प्राप्त हुआ हो, क्या वह बधाई की पात्र नहीं है ? अर्थात् अवश्य बधाई की पात्र हैं।''* इस पर सारी संगत, संतों की गुणमयी दृष्टि की वाह–वाही करने लगी और संतों के वचनों से सहमति प्रकट करने लगी।

वस्तुतः अब यदि थोड़ा–सा विचार करें तो सद्गुरु सांई कँवरराम साहिब ने अपने शिष्य श्री आसूदाराम साहिब को, जो **शिव–स्वरूप** से **अलंकृत** किया वह अक्षरशः सही प्रतीत होता है। जैसे श्री शिव जी अति सरल चित्त हैं, शिवजी वैराग्य मूर्ति हैं, वे संसार का लय करते हैं, सदैव आत्मानन्द में, निजांनन्द में लीन रहते हैं। उनके हृदय में सदैव श्री रामजी निवास करते हैं, वे सदैव ज्ञान–भक्ति को साथ लिये रहते हैं।

इसी प्रकार संत श्री आसूदाराम साहिब भी अति सरल चित्त थे उन्होंने जन्म से वैराग्य साधा था, उन्होंने अपने हृदय में

बसे संसार का और वासनाओं का लय किया, उनका नाश किया। वे सदा आत्मानन्द में निमग्न रहते थे। वे सदैव अपने हृदय मंदिर में इष्ट देव सद्‌गुरु देव को विराजमान रखते थे। वैराग्यवान सदैव ज्ञान और भक्ति को लिये रहता है और सांई आसूदाराम साहिब भी सदैव ज्ञान और भक्ति को लिये रहते थे।

भगवान शंकर ने काम का नाश किया है। उन्होंने प्रभु की आज्ञा से विवाह किया। उनके विवाह में सब देवों के साथ स्वयं प्रभु पधारे थे। शिव जी ने अपनी प्रिया को सत्संग का माध्यम बनाया है। इसी प्रकार संतों ने भी कामनाओं का नाश किया और अपने सद्‌गुरु देव की आज्ञा से गृहस्थ–धर्म में प्रवेश किया। उनके विवाह में भी प्रभु–स्वरुप सद्‌गुरु देव पधारे हैं। उन्होंने भी गृहस्थ को सत्संग का साधन बनाया।

एक विशेष बात, शिव जी ने आदिशक्ति, जगत–जननी माँ पार्वती जी से मिलकर सर्व गुण ज्ञान निधि श्री गणेश जी को जीव मात्र के कल्याण के हेतु प्रकट किया है। इसी प्रकार संत श्री आसूदाराम साहिब जी ने शक्ति–सरुपा माताजी के योग से गुण एवं ज्ञान के भंडार संत सांई चाँड्रूराम साहिब को जगत कल्याण के हेतु प्रकट किया है, जो वस्तुतः अपने नाम के अनुरुप जगत को ज्ञान–भक्ति, कर्म, धर्म की शीतल चाँदनी से आप्लावित कर रहे हैं। साथ ही अपने पिता–माता की स्मृति एवं कार्यों को शोभा एवं विस्तार प्रदान कर रहे हैं।

ऐसे दिव्य लालों (रत्नों) के लिये किसी कवि ने बहुत सुन्दर कहा है–

छोन ऐहिड़ा लाल जमनि,
जेके जमंदे जाम बणी, दुनियां खे रोशन कनि।
भलि हिकड़ो ही चँड्रू चिमके,
जहिंखे लोक डिसी त नचनि।।

ψΨΨΨψ

अध्याय–13

'उन पावन दिनों की कुछ यादें'

जैसा कि हम जान चुके हैं, संत श्री आसूदाराम साहिब जी की किशोरावस्था एवं युवावस्था अपने पूज्य सद्गुरु देव की सेवा–सान्निध्य में व्यतीत हुई। वे सर्दी, गर्मी, देह आदि की चिंता त्यागकर नित–निरन्तर सेवा में निमग्न रहते थे। इसी पावन सेवा से उन्होंने अपने श्री सद्गुरु देव को प्रसन्न कर नाम–रत्न पाया था। श्री सामी साहिब जी ऐसे ही सेवक के लिये फरमाते हैं–

साधूअ शरणि पयो, प्रेमी प्रीति परतीति सां।
जाण विञाए पहिंजी, आज्ञा मंझि रहे।
थधि, गर्मी, बुख डह जी, सामी सभु सहे।
तडहिं लालु लहे, अमोलक अन्दर मों।

इसी प्रकार संत श्री आसूदाराम साहिब जी ने 20 वर्ष का लम्बा समय अपने सद्गुरु के साथ रहिड़की दरबार में बिताया। अपने प्राणप्रिय सद्गुरु एवं उनकी दरबार में बीते पावन दिनों की अनेक यादें संत आसूदाराम साहिब जी अपने हृदय में संजोये हुए रहते थे। प्रसंग वश वे कभी–कभार उन यादों एवं संस्मरणों का उल्लेख कर आनन्द विभोर हो उठते थे। ऐसे समय सद्गुरु के प्रति उनकी हृदयगत श्रद्धा का वर्णन कदापि नहीं किया जा सकता है। ऐसी ही कुछ यादों, संस्मरणों का वर्णन हम यहाँ कर हरे हैं–

नामदान

श्री पोपटमल जी बतलाते हैं, कि एक बार मैं अपने स्वामी संत आसूदाराम साहिब जी के साथ रहिड़की दरबार गया। दरबार में घूमते–घूमते जब हम वहाँ स्थित कुएँ के नजदीक पहुँचे, तो

श्री स्वामी जी ने अपने बीते दिनों का स्मरण कर बतलाया, *''किसी समय इसी कुएँ से परमपूज्य श्री भगत कँवरराम साहिब जी और मैं साथ–साथ पानी भरा करते थे। मैं कुएँ से पानी खींचा करता था और पूज्य भगत साहिब जी घड़े भर–भरकर धर्म–भूंगी (राहत–स्थल) पर रखा करते थे। उन दिनों पानी भरने की सेवा एवं अन्य सेवाएँ परमपूज्य श्री भगत साहिब जी और हम मिल कर किया करते थे। शेष गौ–सेवा का भार मुझे सौंपा गया था, जिस सेवा से प्रसन्न होकर सदा–दयाल पूज्य भगत साहब जी ने मुझे* ***'नाम–दान'*** *देकर कृतार्थ किया।''*

गुरु सेवा ते भगति कमाई, तब इह मानुष देही पायी,
इस देही कउ सिमरहि देव, सो देही भजु हरि की सेव।
भज गोविन्द भूल मत जाहु, मानस जनम का एही लाहु।

ψΨΨΨψ

यकतारा

'संगीत' ईश्वर की प्रकृति का एक अद्‌भुत एवं अनुपम उपहार है। संगीत जड़ से स्पन्दन पैदा कर उसे चेतना प्रदान करने में समर्थ है। संगीत मृतप्राय में जीवन शक्ति संचार करने में समर्थ है। संगीत देश–काल की सीमा से मुक्त है। सब प्रकार के संगीत से भक्ति–संगीत अलौकिक रस प्रदान करने वाला होता है। यह सर्वदेशीय, सर्वकालीन शाश्वत्तता प्रदान करने वाला होता है। सिंध देश में समर्थ संत सतरामदास साहिब और अमर शहीद संत कँवरराम साहिब संगीत के पर्याय के रूप में जाने जाते थे। उनके संगीत की अलौकिक शक्ति के आगे हजारों नर–नारी, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे सम्मोहित हो सुध–बुध भूलकर रसास्वादन करते थे। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, कि उनके संगीत के समय 'शब्द–ब्रह्म' और 'नाद–ब्रह्म' एक होकर 'पर–ब्रह्म' के रूप में प्रकट होता था।

जैसा कि संत श्री आसूदाराम साहिब परम पूज्य संत सांई कँवरराम साहिब की सतत सेवा—सानिंध्य में रहते थे, अतः यह कैसे सम्भव था, कि उनके दिल और दिमाग पर ऐसा अलौकिक संगीत जादू—सा असर पैदा न करता? ऐसे अलौकिक संगीत से उनके मनरूपी समुद्र में भी उत्साह और उमंग की अपार लहरियाँ उठने लगती थीं। किन्तु वे कभी किसी वाद्य को उठाकर स्वयं बजाने को उद्यत् नहीं हुए। एक दिन संयोग से परमपूज्य संत कँवरराम साहिब बाहर भजन पर गये हुए थे, पीछे प्रातःकाल आसादीवार (मंगलाचरण) के समय श्री सांईं रूढ़ाराम साहिब जी (संत सतरामदास के भतीजे) ने श्री आसूदाराम साहिब को पास रखे यकतारे को उठाकर उनका साथ देने को कहा। सांईं आसूदाराम साहिब ने फरमाया, *''भगवन् ! मुझे यकतारा बजाना नहीं आता है और न ही आज के पूर्व मैंने कभी बजाया है।''* तब भी संत सांईं रूढ़ाराम साहिब ने उनसे कहा, *''आप ईश्वर स्मरण करके यंकतारा बजाना आरम्भ तो करें।''* उन्होंने उनकी आज्ञा का पालन करने हेतु ईश्वर को स्मरण कर प्रथम बार यकतारा बजाना आरम्भ किया। ईश्वर, सद्गुरु एवं वीणा—वादिनी माँ सरस्वती की ऐसी कृपा हुई, कि उनकी ऊँगलियाँ यकतारे की तारों पर अनायास ही लयबद्ध हो थिरकने लगीं और संगीत की सुरमई लहरें उठने लगीं। यह देख सांई रूढ़ाराम साहिब जी और पास बैठे सब प्रेमीजन और स्वयं सांईं आसूदाराम साहिब जी भी चकित हो, खुशी से बाग—बाग हो उठे।

ईश्वर सर्वशक्तिमान है, उसकी कृपा से क्या सम्भव नहीं होता है? ईश्वर अपनी दया के द्वार खोल दे तो अंधा देख सकता है, लँगड़ा पर्वत पार कर सकता है, और गूंगा पंचम—सुर में राग अलाप सकता है।

द्वार दया का तू जो खोले, पंचम सुर में गूँगा बोले,
अन्धा देखे, लंगड़ा चलकर पहुँचे काशी रे।

इसके पश्चात् सांईं आसूदाराम साहिब जी ने यकतारा बजाने में महारत हासिल कर ली। वे प्रायः एकान्त क्षणों में यकतारा बजाकर अपनी मधुर वाणी द्वारा ईश्वर का यशोगान अलाप करते थे। उनकी वाणी अत्यन्त ही मधुर थी, स्वयं सन्त सांईं कँवरराम साहिब भी यदा–कदा उनके सुमधुर ईश्वरीय गान को शान्त भाव से सुना करते थे। वे जब प्रेम–भक्ति में तन्मय होकर यकतारा बजाते और गाते थे, तब ऐसा प्रतीत होता था, मानो उन्हें प्रभु के आने की आहट सुनाई दे रही हो।

सुनी मैं हरी आवन की आवाज।
महल चढ़–चढ़ जाऊँ मेरी सजनी, कब आवे महाराज।।
दादर, मोर, पपीहा बोले, कोयल मधुरो साज।
उमुगयो अंदर चऊदस बरसे, दामन छोड़ी लाज।।
धरती रूप नवां–नवां धरिया, पिया मिलन के काज।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, बैग मिलो महाराज।।
सुनी मैं हरी आवन की आवाज।

ψΨΨΨψ

दाढ़ी धारण करना

ईश्वरीय इश्क भी एक अजीब प्रकार का नशा लिये रहता है। यह नशा संसार के स्त्री–पुत्र, धन–मान, पद–प्रतिष्ठा से सर्वथा अनूठा होता है। यह नशा, यह मद किसी भाग्यवान को ही प्राप्त होता है। पर यह इतना सस्ता नहीं है, जितना हम समझते हैं। इसके लिये आशिक को पहले अपने आपको कुर्बान करना पड़ता है। वह भी सहज निर्विकार अर्थात् अहं–शून्य–भाव से। आह! जो ऐसा साहस कर गुजरता है, उसे उसके सद्‌गुरु की कृपा से, मुर्शिद की कृपा से, अनायास ही वह दर्शन–दीदार होने लगता है, जिसके लिये वह दीर्घकाल से साधनारत रहता

है। श्री मुराद फकीर ने इस बात को अपने पद में इस प्रकार स्वीकार किया है–

जहिं ड॒ोंह पीरमुगाँ जे हथाँ, शौक– शराब पीतो सीं।
तहिं ड॒ोंह यार यकीन थिया, सब दिल दे शकु लथो सीं।।
चोहें तबके थिया काबा, अकबर हज, कीतो सीं।
थिया दीदार 'मुराद' तड॒ा जड॒ां ही सिर अर्ज रखियो सीं।।

अर्थात् – जिस दिन मैंने अपने सद्‌गुरु के पावन हाथों से ईश्वर प्रेम के जाम का प्याला पिया, उसी दिन मुझे ईश्वर की अलौकिक अनुभूति प्राप्त हुई और मेरे मन के सब संशय, तर्क–वितर्क समाप्त हो गये। मुझे दसों दिशाओं एवं धरती, आकाश, पाताल सब ओर ईश्वर के दर्शन होने लगे, मानो मैंने कोई बड़ा हज किया हो। किन्तु यह सब तब हुआ जब मैंने अपने सद्‌गुरु को अपना सिर, अपने आप सहज भाव से समर्पित किया।

संत आसूदाराम साहिब भी ऐसे ही सच्चे आशिक थे, जिन्हें ऐसा ही इश्क लगा था। इस इश्क में आशिक को स्वयं की ही कोई सूझ–बूझ ही नहीं रहती, तो फिर दाढ़ी और वेशभूषा आदि की कहाँ हो सकती है? तभी तो ऐसे इश्क के मारो का हाल इस प्रकार होता है–

अशिकां रा षषि निशानी ए पिसिर,
रंग जर्द, आह सर्द, चश्म तर।
बेकरारी, इन्तजारी, दर–ब–दर।।

अर्थ – ऐसे आशिक हर दम ठंडी आहें भरते रहते हैं, उनका रंग फीका पीला, आँखें आसुओं से तर, पल–पल प्रियतम के लिये बेकरार हुये, इन्तजार में डूबे दर–ब–दर फिरते रहते हैं।

ऐसे ही एक बार सांईं आसूदाराम साहिब को रहिड़की दरबार में सेवा में निमग्न रहते–रहते काफी दिन बीत गये। इस

बीच कब उनकी दाढ़ी बढ़ गयी, उन्हें इसकी कोई सुध–बुध न रही। उनके सौम्य मुख–मण्डल पर वह बढ़ी हुई दाढ़ी बहुत दिलकश प्रतीत हो रही थी। ऐसे समय में सद्‌गुरु सांईं कँवरराम साहिब की नजर अनायास ही श्री आसूदाराम साहिब जी पर पड़ी। उनकी बढ़ी हुई सुन्दर दाढ़ी को देखकर स्वामी जी बोले, *"भाई आसूदा (रामजी), आपके मुख–मण्डल पर यह दाढ़ी तो बहुत अच्छी लग रही है।"* बस ! सद्‌गुरु देव का इतना कहना ही उनके लिए बहुत था और तबसे सांईं आसूदाराम साहिब ने सद्‌गुरु की आज्ञा एवं आदेश जानकर दाढ़ी धारण कर ली। यह बात संतों ने अपने एक प्रेमी भक्त द्वारा दाढ़ी धारण करने के विषय में पूछे जाने पर स्वयं प्रकट की थी।

इसी प्रकार सद्‌गुरु भक्ति की मर्यादा एवं महानता यह है, कि शिष्य अपना आपा त्यागकर सदैव अपने स्वामी के श्री चरणों के प्रति ऋणी रहता है और गुरु–भक्ति के प्रेम में आनन्द विभोर होकर वह सद्‌गुरु एवं उससे संबंधित हर व्यक्ति, हर वस्तु का भावपूर्ण वन्दन–पूजन करने लगता है। उसकी तो पल–पल यही इच्छा रहती है–

साजन तेरे चरण की, होई रहाँ सद धूरि।
नानक शरण तुहारिआं, पेखऊँ सदा हजूरि।।

इसी भाव–भक्ति के तारतम्य में संत सांईं आसूदाराम साहिब जी की गुरु–भक्ति और गुरु–भावना के कुछ प्रसंग निम्न प्रकार हैं–

<u>ड</u>हरिकी निवासी भाई गोविन्दराम जी सन्तों के श्रद्धालु शिष्य थे, और सन्तों में पूर्ण निष्ठा रखते थे। उनकी पूर्ण निष्ठा को देखकर ही सन्तों ने उन्हें 'नाम–दान' देकर कृतार्थ किया था। वे बतलाते हैं, कि एक बार श्री सन्त आसूदाराम साहिब <u>ड</u>हरिकी आये। सन्त जब भी <u>ड</u>हरिकी आते थे, वे वहाँ स्थित

सन्त श्री भोजाराम साहिब के दरबार में ठहरते थे। इस बार मैंने सन्तों को अपने घर भोजन अंगीकार करने की बहुत विनती की, जिसे सन्तों ने स्वीकार कर लिया। संयोग से सांईं चन्दीराम साहिब, संत सतरामदास के दौहिते, भी उसी दिन डहरिकी पधारे। वे मुखी सीतलदास जी के बैठक खाने पर ठहरे थे। मैंने उन्हें भी भोजन पर आमंत्रित किया। इस बीच में सन्त आसूदाराम साहिब को भोजन हेतु घर पहुँचाकर, मैं सन्त श्री चन्दीराम साहिब को लेने गया। तब सन्त श्री चन्दीराम साहिब ने मुझसे कहा, *''आप सन्त श्री आसूदाराम साहिब जी को भी यहीं लायें। वे भी यहीं भोजन कर लेंगे।''* मैंने घर जाकर सन्त श्री आसूदाराम साहिब को यह बात कही, तो वे तत्क्षण उठकर सांईं चन्दीराम साहिब के पास पहुँचे और उनके साथ बैठकर भोजन स्वीकार किया। तत्पश्चात् वे मेरे घर आये और वहाँ भी कुछ भोजन ग्रहण कर मेरी मनोकामना पूर्ण की।

इस प्रकार संत श्री आसूदाराम साहिब नीति और मर्यादा के धनी थे। उन्हें जब और जिस समय भी गुरु–दरबार से जैसा संदेश मिलता था, वे तत्काल उसे आदेश समझकर पालन करते थे। एक प्रकार से उन्होंने स्वयं को अपने सद्गुरु पर पूर्णतः न्यौछावर कर दिया था।

जीवत माटी होइ रहो, सांई सनमुख होय।
'दादू' पहले मर रहो, पाछे मरे सब कोय।।

इसी प्रकार श्री पोपटमल जी बतलाते हैं, कि श्री स्वामी जी जब भी कहीं रटन पर जाते थे, तो अधिकतर वे उन्हें अपने साथ ले जाते थे। सन् 1960 में स्वामी जी मुझे अपने गुरु दरबार रहिड़की साहिब ले गये। वहाँ संत श्री चन्दीराम साहिब जी विराजमान थे। तेज गर्मी का मौसम था, मैं वहाँ लगी हुई झल्ली खींचने लगा, ताकि सबको गर्मी से राहत मिले। इतने में पूज्य

श्री स्वामी जी मुझसे झल्ली लेकर स्वयं खींचने लगे। वैसे भी वे सेवा के प्रति तो सदैव तत्पर रहते ही थे। उन्हें झल्ली खींचते देख श्री संत चन्दीराम साहिब जी ने मुझसे कहा, *''आपने संतों को झल्ली खींचने को कैसे दे दी भाई !''* इतने में स्वामी जी विनम्रतापूर्वक संतों से बोले, *''साईं ! अन्त में, मैं भी कुछ सेवा कर लूँ, मैं भी तो इस दर का दास हूँ।''*

'पखा फेरी पाणी ढोवां, जो देवहि सो खाइ।'

यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा, कि श्री स्वामी जी ने इसी वर्ष ही सितम्बर में देह–त्याग किया था। श्री सामी साहिब जी फरमाते हैं, ''ऐसे संतजन, जो स्वयं को सेवक जानकर एवं अपना अहं त्यागकर, सदैव सेवा करते रहते हैं, वे अपने प्रियतम को सदा–सर्वदा, बाहर–भीतर, हाजरा–हुजूर देखते हैं–

सोई सेवक जाणु, जहिंखे सिक सजण जी।
सेवा में सन्मुख रहे, कढी पहिंजो पाणु।
'सामी' डिसे साणु, अन्दर–बाहिर सुपिरीं।

श्री गोविन्दराम टेऊमल जी संत सांईं आसूदाराम साहिब के रहन–सहन' के विषय में बतलाते हैं, कि संत श्री आसूदाराम साहिब प्रति वर्ष रटन करते हुए, अपनी गुरुदरबार रहिड़की, संत वसणशाह साहिब जी की दरबार रोहड़ी, हयात पिताफी के संतों की शदाणी दरबार, सांईं चाँदूराम साहिब के दरबार घोटकी और संत भोजाराम साहिब, संत डांदूराम साहिब के दरबार डहरकी जा पहुँचते थे। वे प्रत्येक स्थान पर एक या दो दिन ठहरते थे, साथ ही सदैव नीचे जमीन पर बिस्तर बिछाकर शयन करते थे।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि संत, जो स्वयं इतनी बड़ी रूहानी मंजिल के मालिक थे, ऋद्धि–सिद्धि के स्वामी थे, वे सद्गुरु एवं संतों की दरबार में नीचे शयन करके स्वयं को

तुच्छ दर्शाते थे। वे अपने मन को अहंकार से सर्वदा दूर रखते थे। यही तो सच्चे संत की पहचान है। श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज ऐसे निर्मल, निरभिमानी पुरुषों को सबमें श्रेष्ठ बतलाते हैं—

सगल पुरख में पुरखु प्रधान,
साध संग जाका मिटै अभिमानु,
आपस कउ जो जाणै नीचा,
सोऊ गणिए सभ ते ऊँचा।।

ψΨΨΨψ

अध्याय—14

सदा दयाल संत आसूदाराम साहिब जी

संतों के जीवन में प्रमुखतः दो ही बातें प्रधान होती हैं, एक ईश्वर स्मरण, दूसरा जगत कल्याण। ईश्वर स्मरण—भजन के लिए तो संत अपना सर्वस्व अर्पण कर ही देते हैं, शेष रहता है जगत—कल्याण। जैसा कि आज यह जीव नाना प्रकार के दुःख एवं क्लेश भोग रहा है, वह अनेक कामनाओं इच्छाओं से दुःखी और व्यथित है। किसी का घर—आंगन बच्चों की किलकारियों से सूना है, तो किसी का बड़े—बूढ़ों की किचकिचाहट से त्रस्त। कोई बीमारी से परेशान है, तो कोई दो वक्त की रोटी पाने को लाचार। कोई अपनों के होते हुए उनके प्यार से वंचित है, तो कोई सारी सुख—सुविधा होते हुए शांति से वंचित। कोई अपने ही मन के नाना विध—विचारों से दब कर मरा जा रहा है, तो कोई कर्ज अथवा दहेज आदि के लेन—देन से मरा जा रहा है। अर्थात् जिसे देखो वह व्यथित, दुःखी, और परेशान हैं। सबके एक मात्र आधार हैं संतजन। तभी तो कहा है—

''संत का मिलाप, तीनों तापों से दूर करे।
पाप ते श्राप, सब रोग—शोक नसंदा।।
करता है निहाल, चाल चलत है बे—गम की।
जहां धरे पग, मेघ मैहर का बरसंदा।।
होवन हारी टाले संत, मुवै को जीवाले संत।
संत को निकाली फाई, फिर कौन फसंदा।।''

संतों से जो मांगो, मिलेगा, सुख, स्नेह, सम्पत्ति। उनके पास सब कुछ है युक्ति—भक्ति, कारण कि उनको देने वाला सर्वसमर्थ स्वामी ईश्वर जो है। अतः संतजन जो कुछ भी ईश्वर

से चाहते हैं, वह उन्हें दे देता है, बस संत के इच्छा करने मात्र की देर है।

जो मांगे ठाकुर अपने ते सोई सोई देवे।
नानक दास मुख ते जो बोले, इहा उहा सच होवे।।

हम सन्तों से यह सब भले ही माँगें, वे अनन्य दयालु हैं, वे हमें वह सब देंगे, किन्तु वे पुकार–पुकार के बार–बार हमें यही संदेश दे रहे हैं, कि हे मन !

भजहु गोविन्द ! भ्लि मत जाहु,
मानस जनम का ऐहि लाहु।
इह तेरा अवसरु, इह तेरी बारि,
घट भीतरि तू देखि विचारि।।
कहत 'कबीर' जीत के हारि,
बहु विधि कहिओ पुकारि पुकारि।

संत आसूदाराम साहिब जी का जीवन ऐसे ही अनेक प्रसंगों से भरा पड़ा है। उनके जीवन में ऐसे प्रसंग प्रतिदिन, हर घड़ी उपस्थित होते रहते थे, जब उनके पास नाना प्रकार की कामनाएँ, इच्छाऐं रख कर लोग आते थे। कोई कहाँ तक उनका वर्णन कर सकता है? उनका तो पल–पल जगत–कल्याण में व्यतीत होता था। यदि हम चाहें तो आज भी, उनकी प्रतिमूर्ति संत श्री चाँड्रूराम साहिब जी के जीवन में, इस बात का प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं। तथापि हम कुछ प्रसंगों का वर्णन करना यहाँ उपयुक्त समझते हैं। पन्नो आकिल निवासी भाई ठारूमल जी को एक बार एक पागल कुत्ते ने जाँघ में काट लिया। समय पर सही इलाज नहीं होने से, भाई ठारूमल जी की जाँघ में जख्म नासूर की तरह फैल गया। इलाज के तहत उन्हें वहाँ की सिविल अस्पताल में भर्ती किया गया। डॉक्टर लाख प्रयासों के बावजूद जाँघ ठीक न कर पाये और उन्हें जाँघ काटने का निर्णय

लेना पड़ा। उनके परिवार वालों ने, उनकी जीवन रक्षा की खातिर, मजबूरन यह निर्णय स्वीकार किया। जब ठारूमल जी को इस बात की जानकारी लगी, तब वे अपनी जाँघ कटवाने हेतु सहमत नहीं हुए। वे तुरन्त अस्पताल से रेंगते–रेंगते संत आसूदाराम साहिब जी की शरण में आये। संतों ने जब उनकी ऐसी दयनीय दशा देखी, तो उनका हृदय पसीज गया। श्री तुलसीदास जी ने कहा भी है–

संत हृदय नवनीत समाना,
कहा कबिन्ह पर कहै न जाना।।
निज परिताप द्रवइ नवनीता,
पर दुःख द्रवहिं संत सुपुनीता।।

संतों ने श्री ठारूमल जी की व्यथा सुनकर, उन्हें हासिल फकीर नामक दरवेश के पास भेजा। जब हासिल फकीर ने ठारूमल जी से यह जाना, कि उन्हें संत आसूदाराम साहिब जी ने भेजा है, तो उन्होंने ऐसे संत को मन–ही–मन नमस्कार किया, जो स्वयं समर्थ होते हुए भी, स्वयं को कुछ नहीं जताते।

आपस कउ जो जाणे नीचा,
सोऊ गणिए सभ ते ऊँचा।
जाका मनु होई सगल की रीना,
हरि हरि नामु, तिनि घटि–घटि चीना।

आशिकों के नुस्खे ही अजीब होते हैं। वस्तुतः वे नुस्खे नहीं, किन्तु उनकी इच्छा–शक्ति है, जो उन नुस्खों के रूप में फलीभूत होते हैं। इसी प्रकार हासिल फकीर ने श्री ठारूमल जी को पास रखी गीली मिट्टी मंत्र पढ़कर जख्म पर लगाने हेतु दी। ईश्वर की लीला ऐसी हुई, संतों की कृपा से भाई ठारूमल जी की जाँघ पूरी तरह से ठीक हो गई। वे खुशी–खुशी संतों के गुणगान करने लगे, कि हे स्वामी ! मैं तुच्छ बुद्धि आपकी महिमा

को क्या जान सकता हूँ। आपकी करनी आप ही जानते हैं। हे नाथ ! आप सर्व कला समर्थ हैं।

करन करावन हार सुआमी,
सगल घटा के अंतरयामी।
अपनी गति मिति जानहु आपे,
आपन संगि आपि प्रभु राते।
तुमरी उसतति तुमते होइ,
नानक अवरू न जानहि कोइ।।

इसी प्रकार हकीम मदनमल के भाई गोकुलमल जी बतलाते हैं, कि एक बार मदनलाल जी के सुपुत्र मंधरमल जी को बुखार हुआ। बहुत दवाइयों के बाद भी बुखार न उतरा। स्थिति यहाँ तक आ पहुँची, कि हमें उनके जीवन की आशा त्यागनी पड़ी। अन्ततः और कोई उम्मीद न देखकर, हम उसे संत श्री आसुदाराम साहिब जी के पास ले आये। भला संत जिनका पृथ्वी पर आगमन ही दूसरों के दुःखों को हरने हेतु हुआ है, वे इस बालक का दुःख कैसे देख सकते थे? गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी संतों की ऐसी सहृदयता देखकर कहा है–

संत, विटप सरिता गिरि धरनी,
परहित हेतु सबन्हि के करनी।

अर्थात्– संत, वृक्ष, नदी, पर्वत, पृथ्वी इनकी करनी अपने लिये नहीं अपितु अन्य लोगों के कल्याण के निमित्त होती है।

अतः संतों ने मघरमल जी को **झाड़** रखी और कहा, *''श्री सद्‌गुरु देव भला करेंगे। आप इसे अपने घर ले जाइये।''* हमने प्रसाद भेंट किया, संत जो उस समय बड़े आनन्द में बैठे थे कहा, *''भाई ! प्रसाद में हरी (साईं) भांग ले आओ, जिसे पीकर थके हुए प्रेमी दुआ करेंगे। भांग भी हरी, आप भी हरे–भरे।''* यह वार्ता

लगभग 1950–51 की है। संतों की अपार कृपा से उनका बुखार शीघ्र उतर गया और वे कुछ ही दिनों में पूर्ण स्वस्थ हो गये।

अनिक उपावी रोगु न जाइ,
रोगु मिटै हरि अवखधु लाइ।
सरब निधान महि हरि नामु निधानु,
जपि नानक दरगाह परवानु।।

जब लखनऊ स्थित दरबार साहिब का निर्माण आरम्भ हुआ, तब सब भक्त जनों ने तन–मन–धन से इस सेवा में योगदान दिया। इन्हीं प्रेमी जनों में से एक भक्त भाई लहरूमलजी भी थे। उन्होंने भी दरबार साहब के लिये एक गाड़ी रेत देना स्वीकार किया। वे सन्तों की शरण में नये–नये ही आये थे। उन्हें संतों की महिमा का भली भाँति ज्ञान न था। वे मन–ही–मन विचार करने लगे, कि मैंने उचित स्थान पर दान दिया है अथवा नहीं इत्यादि।

ईश्वर की लीला ऐसी हुई, कि अगले ही दिन भाई लहरूमल जी का ट्रक उनके ड्राइवर की गलती से दूसरे के ट्रक से जा भिड़ा। जब उन्हें यह समाचार मिला, कि उनका बड़ा नुकसान हुआ है, तो वे इस सदमें को बर्दाश्त नहीं कर पाये और बेहोश हो गये। बेहोशी के क्षणों में भक्त–वत्सल सांई आसूदाराम साहब जी ने उन्हें दर्शन दिये ओर धीरज देते हुए कहा, ''भाई! ईश्वर पर भरोसा रखो, सब ठीक हो जायेगा।'' इसी प्रकार जब वे घटना स्थल पर आये तो उन्होंने यह महसूस हुआ, कि गलती अपने ही गाड़ी के ड्राइवर की है। वे घबराये हुए पुलिस थाने पर रिपोर्ट दर्ज करवाने पहुँचे, तो उन्होंने देखा, कि सामने वही थानेदार बैठा है, जिसे कुछ दिन पूर्व उन्होंने रेत की एक गाड़ी दी थी। उस थानेदार ने भाई लहरूमल जी को आश्वासन दिया, कि आप निश्चिंत रहें, आपको कुछ नहीं होगा।

वापसी के समय उन्हें उस गाड़ी का मालिक मिला, जिनसे उनकी गाड़ी टकराई थी। पहले तो वह बहुत क्रोधित हुआ, पर दूसरे ही क्षण सन्तों की कृपा से, उसके मन का भाव बदल गया। उसने भाई लहरूमल जी को कहा, *"जो हो गया सो ठीक है, अब प्रत्येक अपना खर्च स्वयं करे।"* जब लहरूमल जी ने गाड़ी गैरेज वालों को दिखाई, तो उन्होंने कहा, कि कोई विशेष नुकसान नहीं हुआ है। यह सुनकर भाई लहरूमल जी को मन–ही–मन यह दृढ़ निश्चय हो गया, कि हो–न–हो संत श्री आसूदाराम साहब जी ने ही उनकी लाज रखी है। अन्यथा वे कहीं के नहीं रहते। इस घटना के उपरान्त, वे संतों के श्रद्धालु शिष्य बन गये, जो वर्तमान में आज लखनऊ दरबार में सतत् सेवा करते हैं और बड़े ही निर्मल भाव से संत–सेवा में संलग्न हैं।

तन संतन का, धनु संतन का, मनु संतन का कीआ।
संत प्रसादि हरि नामु धिआइआ, सरब कुसल तब थिआ।
संतन बिनु अवरू न दाता बीआ।
जो जो सरणि परे साधु की, सो पारगरामी कीआ।

एक बार संत आसुदाराम साहिबजी के पिता श्री लुधड़ोमल जी के घुटनें का जख्म नासूर में बदल गया। उन्होंने कई काबिल हकीमों–तबीबों का इलाज किया, किन्तु उन्हें उससे छुटकारा नहीं मिला। एक दिन उन्होंने अपने लाड़ले सुपुत्र श्री आसूदाराम साहिब जी को अपना सुख–दुख सुनाते हुए, घुटने की इस पीड़ा का उल्लेख किया। यह सुनते ही श्री आसूदाराम साहिब जी ने अपने पूज्य पिताश्री को, विनम्र भाव से, इससे छुटकारे का उपाय सुझाते हुए कहा, *"आप अपने कुएँ पर रोज झाडू लगाया करें और वहाँ ज्योति जलाया करें। साथ ही कुएँ पर जमी काई को अपने जख्म पर लगाया करें, ईश्वर की कृपा से सब ठीक हो जायेगा।"* उनके सुझाये उपाय के अनुसार पिता श्री लुधड़ोमल जी ने वैसा ही किया। जो जख्म अनेक वैद्य–हकीम ठीक न कर

पाए, वह जख्म सन्तों के सुझाये उपाय से शीघ्र ठीक हो गया। सच ही है–

'संत बोल सहज सुभाय, संत का बोला विरथा न जाय'

उपरोक्त बात उस समय की है, जब संत आसूदाराम साहिब जी बाल्यावस्था में थे, और अभी रहिड़की गुरुदरबार में भी नहीं गये थे। अपने पुत्र की ऐसी विचित्र वचन–शक्ति और ईश्वर में दृढ़ आस्था देखकर उनके पिता श्री अब उनसे हर मसले पर विचार–विमर्श किया करते थे।

संत करूण हृदय होते हैं। उनका पृथ्वी पर आगमन ही जीवों के कष्ट और शोक निवारण के लिये होता है। संत बाबा आसूदाराम साहिब जी भी ऐसे ही परोपकारी संत थे, जिनके संग–सान्निध्य से अनेकों जीवों के कष्ट दूर हुए और उनका जीवन सुखमय हुआ। संतों की ऐसी ही अहेतु करुणा के पात्र बनने वालों में एक सज्जन भाई जमियतमल जी भी थे।

भाई जमियतमल जी कपड़े का व्यवसाय करते थे। उनका मकान संतों के दरबार के नजदीक ही था। वे अक्सर दरबार के सामने से गुजरा करते थे। अपार करुणा के भंडार संत बाबा आसूदाराम साहिब जी की निगाह प्रायः उन पर पड़ती थी। उस सज्जन का दिनोंदिन गिरता स्वास्थ्य संतों की नजरों से अछूता न रहा। एक दिन अहेतु दयालु संत ने उन्हें अपने पास बुलाकर उनसे उनके स्वास्थ्य का हाल पूछा। तब श्री जमियतमल जी ने बतलाया, कि उन्हें वारे का बुखार आया है, काफी इलाज के बावजूद उससे छुटकारा नहीं मिला है। दैवयोग से उस समय संत बड़ी मौज में बैठे थे, उन्होंने अपने पास रखी भाँग की ठंडाई उन्हें पीने को दी और कहा, *''आप रोज यहाँ दरबार में माथा टेकने आया करो।''* सद्‌गुरु कृपा से वैसा ही हुआ, श्री जमियतमल जी का वारे का बुखार कुछ दिनों में उतर गया और

वे पूर्ण स्वस्थ हो गये। संतों की ऐसी अहेतु करुणा एवं कृपा पाकर वे उनके परम् भक्त बन गये। श्री कबीर साहिब कहते हैं–

'कबीर' संत की गैल न छोडिये, मारग लागा जाउ।
पेखत ही पुनीत होय, भेटत जपिए नाउ।।

अक्टूबर 1958 का समय, पाकिस्तान में मार्शल लॉ (कानून) लागू था। इन दिनों प्रत्येक व्यापारी के लिये स्टॉक प्रदर्शित करना अनिवार्य था। अनियमितताओं के कारण इस कानून के अंतर्गत 94 व्यापारियों को जेल की सजा भुगतनी पड़ी थी। ऐसे समय में एक दिन भाई तोताराम जी के भाई तोलाराम जी अपनी व्यथा लेकर संतों के पास आये और प्रसाद रखकर विनय प्रार्थना करने लगे, कि हे प्रभु! मेरी रक्षा करो, अधिकारी गण मेरी दुकान पर स्टॉक संबंधी पूछताछ करने वाले हैं। सदा दयाल संत ने अपनी दिव्य दृष्टि से उसका भूत–भविष्य देखकर उन्हें धीरज देते हुए कहा, *''भाई, ईश्वर पर भरोसा रख कर निश्चिंत रहो। एक रात्रि कष्ट भुगतना लिखा हुआ है, अतः कल तक सब ठीक हो जायेगा।''* संतों की अपार अनुकम्पा से हुआ भी वैसा ही, दूसरे दिन भाई तोलामल जी पर आया कष्ट सुख से समाप्त हो गया।

अपने सेवक की आपि पति राखै।
ताकी गति मति कोउ न लाखै।।

इसी प्रकार एक दिन भाई रोचलमल जी संत गुलूराम जी दरबार में गुरू ग्रंथ साहिब जी के पाठ साहिब के अवसर पर बैठे हुए थे। तब एक व्यक्ति ने भाई रोचलमल जी को जानकारी दी, कि उनकी दुकान पर फौजी चेकिंग करने आ रहे हैं। रोचलमल जी उस समय बहुत घबरा गये, उन्होंने संत आसूदाराम साहिब जी को (जो उस समय उन्हीं के पाठ साहब का भोग डाल रहे थे), सब हाल कह सुनाया। सदा दयाल संतों ने उसे

निश्चिंत होकर बैठे रहने को कहा और फरमाया, *"भाई ! ईश्वर की दरबार में आये हो, ईश्वर स्वयं आपकी रक्षा करेंगे।"* भाई रोचलमल जी का मन, जो पूर्व में तो बहुत घबरा रहा था, शीघ्र ही संतों के वचन से शान्त हो गया। उन्हें यह दृढ़ विश्वास होने लगा, कि जहाँ ऐसे सर्व समर्थ स्वामी विद्यमान हों वहाँ मेरा क्या, किसी का भी अहित नहीं हो सकता। संतों की कृपा से हुआ भी ऐसा ही ! फौजी चेकिंग बाजार में करते रहे, लेकिन रोचलमल की दुकान पर चढ़े ही नहीं। इसे कहते हैं, संतों में विश्वास की जीत। विश्वास ही भक्त को पार पहुँचाता है।

तूं मेरा मेरु पर्वत सुवामी ओट गहि मैं तोरी।
ना तूं डौले, न हम गिरते, राख लीन हरि मोरी।।

भाई नामदेव जी पुनः बतलाते हैं, कि घोटकी निवासी भाई लक्ष्मणदास जी के भाई नारूमल जी अपने भाई के साथ पन्नों आकिल में बिस्कुट बनाने का काम करते थे। धीरे–धीरे भाई नारूमल जी का संतों के दरबार में आना एवं सेवा करना नित्य नियम बन गया। यहाँ तक कि वे दिन–रात अब दरबार में ही सेवा करते रहते एवं भोजन भी वहीं करते थे। यद्यपि उनके पिता एवं भाई ने उन्हें भोजन घर पर ही करने को बहुत बार कहा, किन्तु उन्होंने नहीं माना। कुछ समय पश्चात भाई नारूमल जी की तबीयत बिगड़ने लगी, यहाँ तक, कि वे कुछ ही दिनों के मेहमान लगने लगे। श्री नामदेव जी बतलाते हैं, कि उन्हें इस प्रकार गंभीर बीमारी से जूझते देखकर, मैं मन–ही–मन सोचने लगा, कि आखिर क्या कारण है, कि इतनी सेवा करने के बावजूद भी, वे ऐसी पीड़ा झेल रहे हैं ! एक दिन मैंने सद्‌गुरु साईं आसूदाराम साहिब जी से इस बात का रहस्य जानना चाहा। श्री सद्‌गुरु देव ने फरमाया, *"भाई ! वह दरबार की रोटी खाता है, इसलिये ही बीमार पड़ा है।"* संतों ने और आगे स्पष्ट करते हुए समझाया, *"भाई ! दरबार में धर्म का पैसा आता है। वह पैसा*

लोग पाप–पुण्य की कमाई करके दरबार में भेंट करते हैं और बदले में अपनी अनेक उचित–अनुचित कामनाएं पूर्ति की मनौती मानते हैं। अतः यह पैसा लोहे के चने चबाने के समान भारी है।'' संतों की यह बात सुनकर, एक दिन मैंने भाई नारूमल जी को प्रेमपूर्वक समझाया और उनके पिता और भाई का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट किया। सबने मेरी बात को सहर्ष स्वीकार किया। तब से भाई नारूमल जी, यद्यपि दरबार में सेवा तो करते थे, किन्तु भोजन घर पर ही करने लगे। संतों की अपार कृपा से शीघ्र ही वे पूर्ण स्वस्थ हो गये।

सतगुरू के उपदेस का, सुना एक विचार।
जो सतगुरु मिलता नहीं, जाना जम के द्वार।
गुरु को सिरपर राखिए, चलिए आज्ञा माहिं।
कहे 'कबीर' ता दास को, तीन लोक डर नाहिं।।

एक बार भाई हरदासमल बतलाते हैं, कि हम अपने गाँव पन्नो आकिल से सक्खर गये। उस समय मेरा पाँच वर्षीय बालक मेरे साथ था। मैं और मेरा बालक जब अस्पताल से सांईं श्री सीरूराम साहब की दरबार की ओर जा रहे थे, तब अचानक ही मेरा बालक मुझसे अलग होकर कहीं गुम हो गया। मैंने उसे बहुत ढूँढा, किन्तु वह कहीं दिखाई नहीं दिया, अन्ततः मैंने बेबसी के इन क्षणों में आँखे बंद करके अपने स्वामी सांईं आसूदाराम साहब जी का स्मरण किया। पलक झपकते दूसरे ही क्षण मैंने देखा, मेरा बालक दूर से मेरी ओर चला आ रहा था। यह कौतुक देखकर मेरा हृदय अपने स्वामीश्री के चरणों में बार–बार कृतज्ञता प्रकट करने लगा। जिन्होंने इस कठिन घड़ी में मेरी लाज रखी।

अउखी घड़ी न देखण देई, अपना बिरद पछाण।
हाथ दे राखे प्रभू अपने सदा–सदा रंग माण।।

इसी प्रकार मुखी परधनमल जी बतलाते हैं, कि एक बार हमारा बालक राम रखिया कुछ बताये बिना ही घर से कहीं चला गया। अन्ततः जब वह न मिला, तब हम संत आसूदाराम साहब की शरण में आये और अपनी परेशानी का कारण उनके सम्मुख रखा। सदा दयालु अंतर्यामी संतों ने माला फेर कर हमें धीरज देते हुए फरमाया, *''आप निश्चिंत रहें, बालक घोटकी गाँव में सर्कस देखने गया है, प्रातः होते ही लौट आयेगा।''* संतों के वचनानुसार बालक प्रातः घर लौट आया। हमारे पूछने पर उसने बतलाया, कि वह घोटकी में सर्कस देखने गया था, सर्कस देखकर वह घोटकी दरबार में ठहर गया। प्रातः होते ही उसे एक सफेद दाढ़ी वाले बाबा ने उठाया और कहा, *''तुम अपने घर जाओ, वहाँ तुम्हें तुम्हारे परिवार वाले ढूँढ रहे हैं।''*

'भूले मारगु जिनहि बताइआ ऐसा गुरु बड़भागी पाइआ।।

ऐसा ही एक प्रसंग भाई वेढ़ोमल लेखूमल जी बतलाते हैं, कि वे एक बार अपनी कार द्वारा सक्खर गये। वापसी में वे अपनी कार की डिक्की में कपड़ा लाद लाये। जब उन्होंने घर पहुँचकर डिक्की को खोलना चाहा, तो कई प्रयासों के बावजूद भी डिक्की नहीं खुली। अन्ततः हारकर उन्होंने अपने स्वामी का स्मरण किया और सहायता के लिए पुकारा। मुश्किल कुशा सद्गुरु देव ने तत्काल उनकी अरदास सुनी। दूसरे ही क्षण उनकी डिक्की प्रथम प्रयास में ही खुल गई। यह देख वे मन में एक बार पुनः परमेश्वर–स्वरुप श्री सद्गुरु देव की महिमा गान करने लगे।

ऐ मेरे मुश्किल कुशा, आदाब है आदाब है।
आपके रहमों करम पे, दुनिया मेरी आबाद है।।

संत बाबा आसूदाराम साहिब जी के अनन्य सेवक भाई गोपालदास जी अपने साथ घटित घटना का उल्लेख करते हुए

बतलाते हैं, कि बात सन् 1953 की है। उनके विवाह का अवसर था, वे घोड़ागाड़ी पर सवार थे, शेष बाराती पैदल नाचते–गाते चल रहे थे। संतों के दरबार के नजदीक पहुँचकर, जैसे ही वे घोड़ागाड़ी से उतरने लगे, तो अचानक ही वह हत्था जिसे पकड़ कर वे उतर रहे थे, टूट गया। वे गिरने को ही थे, कि संतों ने उन्हें हाथ देकर गिरने से बचा लिया। तब वे अपने सद्‌गुरु के चरणों में नमन कर सकुशल विवाह स्थल पर आये। इस प्रकार सद्‌गुरु की अपार कृपा से विवाह निर्विघ्न सम्पन्न हुआ।

आदि पुरख कारण करतार, भगतजना के प्राणआधार।।

लक्ष्मी तो संतों के चरणों की दासी है। जहाँ संत विराजते हैं, वहाँ समस्त ऋद्धि–सिद्धियाँ निवास करती हैं। सदा सर्वदा तृप्त संतजन तो उनकी ओर अपनी दृष्टि तक नहीं डालते हैं। ऐसे ही एक प्रसंग का स्मरण कर भाई नन्दूमल जी बतलाते हैं, कि यह बात उन दिनों की है, जब वे किशोरावस्था में थे। एक दिन संत बाबा आसूदाराम साहिब जी के दरबार में एक भिखारी भीख माँगने आया, तब संतों ने मुझसे कहा, कि अन्दर रखे उनके कोट की जेब से कुछ पैसे निकाल कर उसे दे दो। मैंने वैसा ही किया, तत्पश्चात् मेरे मन में कुमति आयी और मैंने संतों के कोट से कुछ पैसे निकाल कर स्वयं के पास रख लिए। इतने में संत स्वयं उधर आये और मुझे फटकारते हुए कहने लगे, *''नन्दू, चोरी करते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती?''* मुझे अपने किये पर बड़ा पश्चाताप होने लगा। मैंने संतों से बहु भांति क्षमायाचना की। तब अपार सामर्थ्य के स्वामी बाबा आसूदाराम साहिब जी ने मुझे वह चटाई उठाने को कहा, जिस पर वे स्वयं बैठते थे। जैसे ही मैंने उस चटाई का एक कोना ऊपर उठाया, तो देखा वहाँ रूपयों की निर्बाध धारा बह रही थी। यह देख मैं दंग रह गया। तब संतों ने मुझसे कहा, *''अरे नादान, तेरे भाग्य में इतनी माया लिखी है, फिर भी तू ऐसा अनुचित काम करता है।''* मैं अपने किये पर

बहुत शर्मसार था, मैं मन–ही–मन अपने घोर अपराध के प्रति उनसे क्षमा याचना कर रहा था–

सुनहु विनतीआ स्वामी मेरे राम।
कोटि अपराध भरे भी तेरे चेरे राम।।
दुःख हरण, किरपा करण मोहन, कलि कलेश भंजना।
सरनि तेरी राखि लेहु, मेरी सरब में निरंजना।।

मैं ऐसे सदा दयाल सद्‌गुरू पर बलिहारी जा रहा था, जो मुझ दंडभागी को दंड न देकर उपहार दे रहे थे। आज उनकी कृपा के फलस्वरूप, मैं सब प्रकार से समृद्ध और संपन्न हूँ।

एक बार सन् 1949 में पन्नो आकिल निवासी भाई अर्जुनदास लालवानी, भाई हेमनदास लालवानी वर्तमान में फैजाबाद निवासी एवं भाई वलेछा जी, जो अब लखनऊ में निवास करते हैं, संतों के पास आये। भाई अर्जुनदास जी ने संतों से बालक वत प्रार्थना करते हुए कहा, *"स्वामीजी ! हम तीनों ने अंग्रेजी विषय लेकर मैट्रिक की परीक्षा दी है, किन्तु हमें कुछ विषयों में उत्तीर्ण होने की उम्मीद कम है। अतः हे नाथ ! आप ऐसा कुछ करें, जिससे फेल हों तो तीनों हों, और पास हों तो तीनों पास हों।"* उनकी ऐसी बात सुनकर सदा दयाल संतों ने उनसे कहा, *"ईश्वर पर भरोसा रखो, सद्‌गुरु सब अच्छा ही करेंगे।"* भला कभी ऐसा हुआ है, कि कोई संतों के पास आए और उसका अहित हो, कदापि नहीं। संतों की अपार कृपा से तीनों मित्र पास हो गये, साथ ही तीनों को सरकारी नौकरी के नियुक्ति–पत्र भी मिल गये। वे सब गद्‌गद् हृदय से संतों के शुक्राने अदा करने लगे, जिनकी कृपा से उन्हें ऐसी सफलता प्राप्त हुई थी। तभी तो श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज संतों के

लिये फरमाते हैं, कि संतजन हरिनाम से स्वयं का तो कल्याण करते ही हैं, साथ ही सब लोगों को भी पार उतारते हैं–

'आप तरहि लोकहु निसतार'

भाई सखीराम खत्री उन भाग्यशाली भक्तों में से एक हैं, जिन्हें संत सांईं आसूदाराम साहिब की पावन सेवा एवं सत्संग का लाभ प्राप्त हुआ। पन्नो आकिल निवासी इस सतत् सेवादारी ने प. पूज्य सांईं आसूदाराम साहिब जी के सुन्दर जीवन–चरित्र लिखने का सौभाग्य भी प्राप्त किया है। इस गुरुमुख सज्जन ने संतों के संग में कई लीलाऐं देखी एवं सुनी। साथ ही संतों की अलौकिक शक्ति संबंधी कई अनुभव भी प्राप्त किये। भाई खत्री जी ने ऐसे कई अनुभवों में से, एक अनुभव स्वयं के द्वारा लिखित संतों के जीवन–चरित्र में जो वर्णन किया है, वह इस प्रकार है, कि यह प्रसंग उन दिनों का है, जब वे किशोरावस्था में थे। तब एक बार उन्हीं के मित्र भाई पप्पूराम जी ने, जो पन्नो आकिल स्थित संत बाबा आसूदाराम साहिबजी पाठशाला का कार्यभार सम्भालते थे, उन्हें सवा तीन सौ रुपये देकर पाठशाला के लिये पाठ्य–सामग्री लाने को कहा। अगले दिन प्रातः भाई खत्री जी मीरपूर माथेले एवं सक्खर से वह सामग्री लाने हेतु जाने लगे। उन्होंने अपना परिचय–पत्र और वे रुपये अपनी जेब में रखे तथा दरबार में माथा टेककर खरीदारी के लिये चल पड़े।

मार्ग में उन्हें उनके भाई मिले, जिन्होंने उनसे कहा, कि वे कुछ देर के लिये दुकान पर चलकर बैठें, ताकि वे कुछ जरूरी कार्य निपटा कर वापस आएँ। भाई खत्रीजी बतलाते हैं, कि वे भाई साहब के कहे अनुसार अपनी दुकान पर आये, किंतु वहाँ अत्यधिक ग्राहकों के कारण, उन्हें शाम तक फुरसत न मिली, अतः वे उस दिन पाठ्य–सामग्री खरीदने नहीं जा सके। शाम को जब वे काम से निवृत्त होकर, पुनः दरबार साहिब में आये,

तब वहाँ उनकी मुलाकात भाई पप्पूराम जी से हुई। उन्होंने उनसे पाठ्य–सामग्री की खरीदी हेतु पूछा। भाई खत्री जी ने उन्हें सब वृत्तांत बतलाते हुए कहा, कि वे कल प्रातः खरीदी हेतु सक्खर एवं मीरपुर माथेले जाएँगे। तब भाई पप्पूराम जी ने उनसे वह राशि माँगी, जो उन्हें खरीदी हेतु दी थी। जब श्री खत्री जी ने अपनी जेब से पैसे निकालने चाहे, तब उन्होंने देखा, कि वह परिचय–पत्र और पैसे, जो उन्होंने प्रातः अपनी जेब में रखे थे, नहीं हैं। उन्हें मन–ही–मन निश्चय हो गया, कि हो–न–हो वे पैसे एवं परिचयपत्र कहीं खो गये हैं। उन्होंने स्थिति को समझते हुए भाई पप्पूरामजी से कहा, कि पैसे घर रख आये हैं, वे प्रातः होते ही लाकर दे देंगे।

वे बहुत घबरा गये, उन्होंने सोचा, कि मुझे घर से भी इतने रुपये कल तक न मिल पायेंगे। अतः कल प्रातः मैं पप्पूराम जी को क्या उत्तर दूँगा? यह सोचकर, वे बहुत चिंतित हो रहे थे, तभी उन्होंने संत बाबा आसूदाराम साहिब जी से मन–ही–मन आर्त हृदय से प्रार्थना की, कि अब वे ही आकर मेरी लाज रखें और मुझे इस विपत्ति से उबारें।

'तिथे <u>तूं समरथु,</u> जिथै कोई नाहिं'

इतने में जब भाई खत्री जी दरबार में स्थित भंडारे की ओर गये, तब उन्हें वहाँ पूज्यनीय माता साहिब जी, अर्थात् संत बाबा आसूदाराम साहिब जी की धर्मपत्नी मिलीं, जिन्होंने उनसे पूछा, *''बेटा, आज क्या खो दिया है!''* उन्होंने बात को छुपाते हुए पू. माता साहिब जी से कहा, *''माता मैं समझा नहीं, आप क्या कहना चाहती हैं ?''* तब पू. माता साहिब जी ने फिर से अपना प्रश्न दोहराया, कि मैं तुमसे पूछना चाहती हूँ, कि तुमने आज क्या गँवाया है ? तब उन्होंने उन्हें सब हकीकत कह सुनायी। इस पर पू. माता साहिबजी ने उन्हें वे ही पैसे एवं परिचय–पत्र लौटाते हुए कहा, *''ये लो अपने पैसे, सुबह बिटिया*

को ये पानी के स्थान के पास पड़े मिले थे।'' पैसे हाथों में लेते हुए उनकी आँखें नम हो आयीं, यह देखकर, कि किस प्रकार स्वामी ने इस विपत्ति में तत्काल आकर मेरी रक्षा की और मेरी लाज रख ली। अन्यथा कल मैं पप्पूराम जी को क्या उत्तर देता? उन्होंने श्री स्वामी जी एवं पू. माता साहिब जी के अहसान माने और वे पैसे लाकर भाई पप्पूराम जी को लौटाये। भाई पप्पूराम जी ने पैसे लेते हुए उनसे कहा, *''भाई, इतनी जल्दी भी क्या थी, प्रातः दे देते, पैसे कहीं भागे तो नहीं जा रहे थे।''*

'अपने जन का परदा ढाकै,
अपने सेवक की सर पर राखै।
अपने दास कउ देइ बड़ाई,
अपने सेवक कउ नाम जपाई।।

प्रायः सच्चे संतजन किसी जीव को पहिले तो सहज ही अपनाते नहीं हैं और फिर यदि किसी जीव को एक बार अपनाते हैं, तो समय–असमय, उचित–अनुचित में उनकी रक्षा करना, उसे सन्मार्ग दर्शाना और अंततः उसे भव सागर से पार उतारना, अपना विरद समझते हैं, यही सच्चे सन्तो की बड़ाई है। इसी प्रकार भाई नेवन्दराम, गोकुलमल जी बतलाते हैं, संत आसूदाराम साहिब जी भी अपने शिष्यों–दासों–शरणागतों की कमियों को अपना विरद जानकर अपने हृदय में रखते थे–

नीकी की महि कल राखे।।

और समय–असमय उनके कल्याणार्थ, उन्हें उचित संमार्ग दर्शाते थे और अन्दर ही अन्दर कृपा करके, उन्हें सही रास्ते पर लाते थे।

१. एक बात यहां स्पष्ट करना अधिक उपयुक्त होगी, कि संत शब्द अपने आप में सत्य, अर्थात सच का पर्याय है। किन्तु आज उपजे हुए तथाकथित 'संतों के कारण, हमें विवशतावश सच्चे–संत शब्द का उपयोग करना पड़ रहा है।

यहाँ यह बात स्पष्ट करना उचित होगा, कि हम सामान्य जनों को संतों की करनी की अपेक्षा, कथनी पर ज्यादा ध्यान देना चाहिये। संतों की करनी का मर्म तो बड़े–बड़े न जान सके। साथ ही समय–असमय संतों में देखा जाने वाला गुस्सा या क्रोध आदि उनका स्वभाव कदापि नहीं होता है। वह तो सामयिक अर्थात् उनकी क्षणिक एवं उस समय की प्रतिक्रिया रहती है। यदि हम उनकी इन बातों की ओर ध्यान देंगे, तो हम कभी भी यथार्थ तक नहीं पहुँच सकेंगे।

सच्चे सन्त' तो मान–अपमान से सर्वथा निर्लिप्त रहते हैं। भला उन्हें जब प्रभु परमात्मा ने **अपना** बनाकर, सर्वोत्तम मान दिया है, तो उन्हें संसारी जीवों के मान की भूख कहाँ ? उनके लिए तो मान–अपमान, निन्दा–स्तुति, राजा–रंक सब एक समान होते हैं।

तैसा मान, तैसा अपमान, तैसा रंक, तैसा राजान।
जो वरताओ साई जुगत,
नानक ओह पुरख कहिये जीवन मुक्त।

ऐसे संतों के लिए तो मान–अपमान आदि से बढ़कर अपने सेवकों–भक्तों की हित–साधना होती है। सेवक भले ही अहम् एवं अज्ञानता वश अपने सद्गुरु से रूठ जाते हैं, पर सन्त उन्हें स्वयं मनाने के लिए आगे आते हैं।

श्री सामी साहिब जी भी कहते हैं, कि हे प्यारे ! तुम अहम् त्याग कर संतों की सेवा–चाकरी करो, जिससे प्रसन्न हो प्रियतम तुम्हारे घरख अर्थात् ईश्वर तुम्हारे अंतः करण में आ विराजमान हों।

हई होद न कर, मुठी महबूबनिं सां।
पोहं चक्की, भरि पाणी, मोहब्बत मटियूं भरि।
त दोस्त तुंहिंजे दर, पेही अचेइ पाणहीं।

एक बार संत आसूदाराम साहिब के पास एक मीरासी, अर्थात् सारंगी वादक आये। उन्होंने संतों को अपनी व्यथा बतलाते हुए प्रार्थना की, कि हे स्वामी ! आप परोपकारी संत है, आपने हम जीवों के उद्धार के लिए ही शरीर धारण किया है। मुझ पर भी आप कृपा करें। हे स्वामी ! मेरी आवाज कुछ समय से बंद सी हो गई है। मेरा जीवन–यापन, गायन–भजन पर ही निर्भर है, आप दया करें, जिससे मेरी आवाज पुनः खुल जाए। 'संतों ने उस मीरासी के दर्द को महसूस किया और उन पर अपनी अमोघ कृपा करते हुए बोले, *''हम तुम्हें एक काला धागा बाँधने हेतु देते हैं, किन्तु शर्त यह है, कि तुम आज के बाद गौ–माँस नहीं स्वीकारोगे।''* उस मीरासी ने संतों की आज्ञा शिरोधार्य की। ईश्वर एवं संतों की अपार कृपा से उसकी आवाज पूर्ववत् हो गई। वह कुछ दिनों पश्चात् पुनः संतों की शरण में आया और संतों के शुकरानें अदा करते हुए कहने लगा, *''हे स्वामी ! अब मेरी आवाज खुल गई है और जहाँ भी जाता हूँ, वहाँ पर खूब रुपया–पैसा मिलता है। हे नाथ ! यह सब आप ही की कृपा का फल है। आप ऐसी कृपा दृष्टि सदैव बनाए रखें, जिससे मैं सदा–सदा हरि के गुण गाता रहूँ।''*

हरि सालाही सदा–सदा तनु मनु सउपि शरीरु।
गुरु सबदी सचु पाइआ, सचा गहिर गंभीर।।

इस प्रकार उपरोक्त प्रसंगों में हमने संत बाबा आसूदाराम साहिबजी के प्राणी मात्र के प्रति प्रेम, दया, करूणा का दर्शन किया। हे ऋषीश्वरों ! कोई कहाँ तक उनकी महिमा का वर्णन कर सकता है? हम उनके निर्मल मन और जीव मात्र के प्रति उनके सहृदयता के दर्शन, इसके पूर्व भी गौ–सेवा के अध्याय में कर चुके हैं। अब हम यहाँ उनकी ऐसी ही एक सहृदयता का वर्णन करके, इस अध्याय को विराम देते है–

संत आसूदाराम साहिब जी के गाँव जतोइन में पीने के पानी के लिये मात्र एक कुआँ था। गाँव की सब माताएँ प्रायः वहीं से पानी भर लाती थीं। जैसा कि हम श्री मास्टर रूपचन्द जी के प्रसंग में जान चुके हैं, कि वे प्रातः उठकर गाँव की गलियों को झाड़ू लगाकर साफ करते थे। एक बार उनसे भाई मेघराज जी, फैजाबाद ने, जो उनके गाँव में पहली बार आये थे, उन्हें ऐसी सेवा करते देख, उनसे इसका कारण जानना चाहा, तब उनके बहनोई भाई रूपचन्द जी ने उनसे कहा, कि वे इसका कारण, उनके स्वामी श्री आसूदाराम साहिब जी से ही जानें। जब भाई मेघराज जी ने संतों से इस विषय में जानना चाहा, तब संतों ने उनसे कहा, *''भाई, इस गाँव की सब माताएँ पानी भरने के लिये रोजाना उस कुएँ पर जाया करतीं हैं। वे एक–एक, दो–दो घड़े पानी के भरके सिर पर रखकर लातीं हैं। उन्हें पैर में कहीं कोई पत्थर, कंकड़, काँच आदि न लगे, इस हेतु वे उन गलियों की साफ–सफाई करवाते हैं, जिससे माताओं को किसी प्रकार का कोई कष्ट न हो।''* आह ! कितनी संवेदनशीलता और सहृदयता है, संतों के निर्मल मन में जीव मात्र के प्रति। ऐसे पावन संतों के श्री चरणों में हम सब का कोटि–कोटि प्रणाम !

ψΨΨΨψ

अध्याय–15

मेरे अंतर्यामी 'समर्थ–स्वामी'

सच्चे संतजन सदा–सर्वदा हरि नाम में निमग्न रहते हैं। हरि नाम के सतत् स्मरण से, ऋद्धि–सिद्धि सदैव उनके आस–पास सेवा हेतु निवास करती है। किन्तु वे ऋद्धि–सिद्धि से दूर रहते हैं। वे उनकी ओर नजर उठाकर देखते तक नहीं हैं। वास्तव में हरि नाम ही उनकी सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला कल्पवृक्ष और कामधेनु है–

पारजात इहु हरि को नाम्।
कामधेनु हरि हरि गुण गाम।।

जब संत अपनी ईश्वरीय मौज में निमग्न रहते हैं, तब यदा–कदा ऐसी अनेक घटनाएँ घटित होती हैं, जिनसे उनकी भक्ति की शक्ति प्रकट होती है। वास्तव में ईश्वर स्वयं ही, ऐसे अवसर पैदा करके, अपने भक्त को प्रकट करता है। ऐसी ही कुछ लीलाओं का वर्णन हम यहाँ कर रहे हैं, जो संत श्री आसूदाराम साहिब जी के महान् प्रताप को प्रकट करतीं हैं।

भाई नामदेव हरदासमल जी ऐसी ही एक वार्ता बतलाते हैं, कि गर्मी के दिन थे। एक रात अत्यधिक गर्मी पड़ने लगी। दरबार में लगी हुई झल्ली हमेशा के अनुसार भाई रामोमल जी झुला रहे थे। झल्ली झुलाने के बावजूद भी गर्मी अपने जोरों पर थी। यह देख अनायास ही भाई रामोमल जी ने संत सांईं आसूदाराम साहब जी से बालकवत् लाड़ से हाथ जोड़कर कहा, *"हे समर्थ स्वामी ! आप ऐसी लीला करें, जिससे हवा बहने लगे और गर्मी से सबको राहत मिले।"* सत्संग का समय था। संत अपनी अलौकिक मौज में बैठे थे, उन्होंने भाई रामो की प्रार्थना सुनकर कहा, *"हे भाई रामो, तुम सात बार राम का नाम उच्चारो,*

हवा बहने लगेगी।" भाई रामो ने संतों की आज्ञा अनुसार सात बार राम–नाम उच्चारा। ईश्वर की लीला ऐसी हुई, कि चंद मिनटों में तूफानी वायु चलने लगी, जिससे सबको गर्मी से तत्काल राहत मिल गई और सब सन्तों की वचनशक्ति से अत्याधिक प्रभावित हो उनके गुण गाने लगे।

ऐसे तो सतगुरु मिले, जिनसे रहिये लाग।
सब ही जग शीतल भया, मिटी आपनी आग।

इसी प्रकार भाई गोपालदास जी संतों की अलौकिक शक्ति से संबन्धित प्रसंग सुनाते हैं, कि एक दिन संतों के पास एक योगी जी पधारे। उन्होंने वहाँ भजन–कीर्तन किया। जब योगी जी जाने लगे, तो संतों ने भाई गोपालदास जी को ढाई रुपये देते हुए आज्ञा दी, कि डेढ़ रूपया यकतारे की तार बनवाने के लिये देकर, वे वापसी में अपनी दाढ़ी भी बनवाते हुए आयें। जब गोपालदास जी यकतारे का तार एवं दाढ़ी बनवाकर दरबार पहुँचे, तब स्वामी जी विश्राम कर रहे थे। भाई रामोमल जी झल्ली झुला रहे थे। तब वे उनसे झल्ली लेकर स्वयं झुलाने लगे। कुछ समय पश्चात् संत निद्रा से जागे और उनसे पूछने लगे, *"भाई दोनों काम कर आये ?"* उन्होंने कहा, *"जी सांईं।"* तब अचानक ही संतों ने भाई गोपालदास जी से कहा, *"जरा सिर नीचे तो करो, मैं भी तो देखूँ, दाढ़ी किस तरह बनवाई है?"* भाई गोपालदास जी ने अपना सिर संतों की गोदी की ओर झुकाया। तब अनायास ही संतों ने अपना सामर्थ्य भरा हस्त, भाई गोपालदास जी के सिर पर रक्खा। श्री गोपालदास जी तत्क्षण वजूद (भावावेश) में आ गये और उस भावावेश में, उन्होंने एक दृश्य देखा, कि सारा संसार जलमय हो गया है और वे एक पर्वत शिखा पर बैठे हुए हैं। कुछ क्षणों पश्चात् यह दृश्य लुप्त हो गया और उन्होंने स्वयं को झल्ली झुलाते हुए पाया। तब वे संतों की अलौकिक शक्ति और देखे हुए दृश्य को मन–ही–मन विचार कर पुनः–पुनः संतों

से प्रार्थना करने लगे, कि हे स्वामी ! जिस प्रकार अब उबारा है, अंत समय में भी ऐसे ही भवसागर से उबारना –

अब मैं शरण तुम्हारी जी, मोहि राखो कृपा निधान।
अजामेल अपराधी तारे, तारे नीच सदान।।
जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढ़ी विमान।
'मीरा' दासी शरण तिहारी, सुनिये दीनो कान।।

हे मुनीश्वरों ! वस्तुतः आपका हम जीवों पर यह बहुत बड़ा उपकार है, जो आप यदा–कदा हमें ऐसे गुप्त रहस्यों से अवगत करा कर सचेत करते हैं। हे ऋषीश्वरों, निःसन्देह यह आपकी **अहंम् ब्रह्मास्मि** की ऊँची अवस्था है, जहाँ जीव और ईश्वर की भिन्नता समाप्त हो जाती है। जहाँ मात्र ब्रह्म–स्वरूप अर्थात् केवल 'तत्व' विद्यमान रहता है।

परमहंस श्रीरामकृष्णदेव जी भी ऐसे ही गुप्त रहस्य को अपने परमभक्तों के निकट उजागर करते हुए कहा करते थे, *"भाई ! जो राम और कृष्ण हैं, वही मैं हूँ।"* ऐसे और भी अनेक उदाहरण मिलतें हैं, जहाँ विभिन्न संतों ने, परम भक्तों ने ऐसे ही वाक्य कहे हैं, जैसे श्रीपलटू साहिब जी ने अपने शब्द में वर्णन किया है–

आदि अंत हम ही रहें, सब में मेरो वास।
सब में मेरो वास और न दूजा कोई।
ब्रह्मा विष्णु महेश रूप सब हमरे होई।
हमहीं उत्पत्ति करें, करें हम ही संहारा।
घट–घट में हम रहें, रहें हम सब से न्यारा।
परब्रह्म भगवान् अंश हमरे कहलावें।
हमहीं सोहम् शब्द जोति हैं, सुन्न में आवें।
'पलटू' देह के धरे से, वे साहिब हम दास।
आदि अन्त हम ही रहे, सब में मेरो वास।

इसी प्रकार एक बार संत सांईं आसूदाराम साहिब जी को पंवहारनि गाँव के कुछ सेवकगण अपने कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिये आमंत्रित कर आये। कार्यक्रम के दिन श्री स्वामी जी सुबह अपने गाँव जतोइन से पैदल पंवहारनि गाँव की ओर चल पड़े। भाई सेवोमल जी एवं अन्य प्रेमियों ने जब उन्हें पैदल पंवहारनि जाते देखा, तो उन्होंने स्वामी जी से निवेदन किया, कि कुछ देर रुक जायें, जब तक वे घोड़ा ले आयें। उधर पंवहारनि के प्रेमीगण बड़ी व्यग्रता से संतों की राह देख रहे थे। अतः अंतर्यामी संत अपने सेवकों की इतनी व्यग्रता देख, बिना कहीं रुके बड़ी तेजी से कदम बढ़ाते हुए पंवहारनि गाँव की ओर चले जा रहे थे। मानो वे हवा से बातें करते जा रहे थे। पीछे भाई सेवामल जी बड़ी तत्परता से घोड़े पर सवार होकर संतों की ओर बढ़े, किंतु पूरे मार्ग में कहीं भी उन्हें संत जाते हुए नहीं दिखाई दिये। भाई सेवामल जी ने मार्ग में कुछ सज्जनों से संतों के विषय में पूछा भी, लेकिन सभी ने कहा, कि हाँ, संत अभी–अभी यहाँ से गुजर रहे थे। भाई सेवामल जी ने पंवहारनि पहुँचकर देखा, तो स्वामी जी उनसे पहले ही वहां पहुँच चुके थे। समय पर संतों को आता देख, सब भक्तों के चेहरे खिल उठे, तब भाई सेवामल जी ने संतों से विनम्रतापूर्वक कहा, *''प्रभु ! आप कुछ देर रुक जाते, मैं घोड़ा लेने ही गया था।''* तब संतों ने उनसे कहा, *''भाई ! हमें सेवकों ने बड़ी व्यग्रता से याद किया था, अतः हम चाहकर भी स्वयं को न रोक सके, और यहाँ पहुँच गये।''* गुरुवाणी में उल्लेख है –

अपने सेवक की आपे राखे, आपे नाम जपावै।
जहँ जहँ काज किरति सेवक के, तहाँ–तहाँ उठि धावे।
सेवक कउ निकटी होई दिखावे,
जो–जो कहे ठाकुर पहि सेवक, ततकाल होई आवे।।

वैसे भी देखें तो प्रभु के प्यारे संतों की गति निराली है। वे कब, कैसे, कहाँ पहुँचते हैं, कोई नहीं जान सकता है।

बाल्य अवस्था में शरारत एक स्वाभाविक लक्षण है, कदाचित् यह शरारत एक सीमा में हो। बालक की ये शरारतें ही बालक के परिजनों के लिये आकर्षण का केन्द्र रहती है। मुरली मनोहर श्याम सुन्दर की शरारतें किसे याद नहीं ? इन्हीं शरारतों के कारण ममतामयी माँ यशोदा ने एक बार अपने लाला को खम्भे से बाँधने का यत्न किया था। इसी प्रकार एक बार संत आसूदाराम साहिब ने अपने सुपुत्र बालक चाँड्रूराम साहब जी को किसी शरारत के कारण घर के सम्मुख स्थित खजूर के पेड़ से बँधवाया। जब बालक की ममतामयी माँ ने अपने लाल को बँधा हुआ देखा, तो वे शीघ्र दौड़ती हुई संतों के पास आई और कहने लगीं, कि मेरे लाल को क्यों बाँधा है ! तब वात्सल्य के धनी श्री आसूदाराम जी साहिब ने उनसे कहा, "बेशक, यह गुरु नानकदेव जी के लाल, लक्ष्मीचन्द जी के समान, यह लाल है। और निःसंदेह आगे चलकर **लाल** की भांति चमकेगा, किन्तु इसकी शरारत के कारण इसे बांधा है। उसी समय ईश्वर की अजीब लीला घटित हुई, बालक चाँड्रूराम साहिब जी का मुखड़ा संतों के कथनानुसार अनायास ही **लाल** की तरह चमकने लगा। अपने पिता का ऐसा अतुलनीय सामर्थ्य और अहेतु कृपा बख्शीश देखकर बालक चाँड्रूराम साहिब जी अपने पूज्य पिता से मन–ही–मन यह वर याचना करने लगे–

गुरुदेव दया करके, मुझको ऐसा वर दो।
सेवा–सिमरन–सतसंग, झोली में मेरे भर दो।
सेवा हो शबरी–सी और प्रेम हो मीरा–सा।
श्रद्धा हो तुलसी–सी, और बोल हो कबीरा–सा।
दे राम–नाम अमृत, जीवन को सफल कर दो।

संतश्री आसूदाराम साहिब जी के वचनानुसार आज साँईं चाँड्रूराम साहिब जी निःसंदेह एक लाल की भाँति चमक रहे हैं, जिनके ज्ञान का प्रकाश आज जन–जन को आलोकित कर रहा हैं। अपने परमपूज्य पिता सांईं आसूदाराम साहिब जी की इन्हीं बातों को स्मरण कर आज सांईं चाँड्रूराम साहिबजी अपने पू. पिता श्री पर वारी–वारी (न्यौछावर) जाते हैं। जिन्होंने उन्हें प्रेम एवं ज्ञान का ऐसा प्याला पिलाया, जिसके फलस्वरूप, वे नित निरन्तर अहं–शून्य होकर आत्म–निमग्न रहते हैं और सारे जगत को आत्मवत् निहारते हैं।

सदाई कुरबान वञां तुहिंजे नावं ताँ,
जहिं पिआरे प्रेम रस, डिनों आतम् ज्ञान।
रहियो न रतीअ जेतरो, अन्दर में अभिमानू,
'सामी' सभ जहान, जागो डिठो ज्योति में।

संत सांईं आसूदाराम साहिब जी दिव्यदृष्टि एवं सत्य–संकल्प संपन्न थे। कई अवसरों पर उनके प्रेमी भक्तों ने ऐसा अनुभव किया था। इसी प्रकार भाई नचणमल जी के भतीजे कन्हैयालाल, ऐसे ही एक प्रसंग का स्मरण कर बतलाते हैं, कि शिवरात्रि का अवसर था, संत आसूदाराम साहिब जी साध–संगत के साथ भजन में बैठे थे, तब अनायास ही उन्होंने जलगाँव के संत सांईं हरदासराम साहिब का स्मरण करते हुए, भक्तों के सम्मुख फरमाया, कि यदि आज यहाँ सांईं हरदासराम साहिब जी भी होते, तो आज के सत्संग का आनन्द ही कुछ और होता। संतों के मुख से ये वचन निकले ही थे, कि कुछ क्षणों में संत हरदासराम साहिब जी वहाँ आ पधारे। सारी संगत उन्हें अचानक आया देख आश्चर्य चकित रह गई। सन्तों ने उठकर उनका स्वागत–सत्कार किया, फिर पूछा, *"भगवन् ! इस समय कोई ट्रेन अथवा बस के आने का समय भी नहीं है, अतः आप इस समय किधर से पधार रहे हैं !"* संत हरदासराम साहिब जी बोले,

"भाई ! बुलाते भी स्वयं हो और पूछते भी स्वयं हो!" इस पर संत शांत रहे। वे भक्त बतलातें हैं, कि हमने इस विषय में संतों से बाद में विनय पूर्वक पूछा, तो प्रथम तो संत आसूदाराम साहिबजी खामोश रहे, किन्तु हमारे और अनुरोध करने पर फरमाया, *"भाई ! जब हम कीर्तन कर रहे थे, तब हमें बाबाजी कहीं से आते हुए दिखे थे। अतः हमें उनसे मिलने की चाह हुई और अंतर्यामी संत स्वयं आ पधारे।"*

जगत कल्याण हेतु जगह–जगह प्रकट होने वाले ऐसे अंतर्यामी सन्तों को सम्भवतः इसी कारण ही, श्री संत तुलसीदास जी ने, चलने–फिरते तीर्थराज प्रयाग की संज्ञा से अंलकृत किया है–

मुद मंगलमय संत समाजु जो जग जंगम तीरथराजु।
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा, सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा।

भाई गोविन्दराम जी बतलाते हैं, कि एक बार मैं सन् 1959 में संतों को मीरपुर से पन्नो आकिल उनके स्थान पर ले आ रहा था, हम बस के लिये प्रतीक्षा कर रहे थे। उन दिनों इस मार्ग पर ज्यादा बसें नहीं चलती थी। अतः बस के आने में कुछ विलम्ब हुआ। तब संतों ने माला फेरी और कहा, कि बस आ रही है। संतों के मुख से वचन निकलने की देर थी, कि बस आती दिखाई दी। वहां खड़े कुछ मुसलमान, संतों की इस वचन सिद्धि और सहज अंतर्यामिता को देखकर, अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्हें पूर्ण दरवेश जानकर श्रद्धानत हुए।

संत सदैव ईश्वर–आश्रित रहते हैं। उनका दाता एक मात्र राम है। अतः वे ऐसे सांई पर भरोसा रखकर, किसी की भी अधीनता स्वीकार नहीं करते हैं और सदा–सर्वदा पूर्णतः निश्चिंत रहते हैं। ऐसे ही एक बार दरबार में थोड़ा सा अनाज शेष बचा था। यह देखकर, संत आसूदाराम साहिब जी ने अपने भाई श्री

चोटरमल जी को, एक मन अनाज खरीद कर लाने को कहा। श्री चोटरमल जी ने इच्छा व्यक्त की, कि एक मन अनाज के स्थान पर, एक बोरी अनाज लाया जाये, तो उचित रहेगा। इस पर संतों ने उनसे, ईश्वर पर भरोसा रखने और आगे देखते रहने को कहा। जब श्री चोटरमल जी अनाज लाने हेतु मार्ग से जा रहे थे, उसी समय एक व्यक्ति एक बोरी अनाज दरबार की ओर ले आया और उसने श्री चोटरमल जी से उतरवाकर, उसे दरबार में रखने का निवेदन किया। अनाज उतरवाकर वह व्यक्ति चलता बना। तब संतों ने श्री चोटरमल जी से कहा, *''भाई ! ईश्वर पर भरोसा करने का फल देख लिया।''* श्री चोट्रमलजी यह सब लीला देखकर अत्यधिक प्रभावित हुए और संतों का गुणगान करने लगे।

संता के कारजि आप खलोइआ,
हरि कमु करावणि आइआ राम।

संतजन सदा शीलवान, संतोषवान और क्षमावान होते हैं। वे अपार सुख के सागर होते हैं। सदा हितभाषी, मितभाषी वे सबको सुख प्रदान करने में सदैव संलग्न रहते हैं। हम जीवों को चाहिये, कि हम सदैव उनकी आज्ञा का पालन करें, उनकी इच्छानुसार आचरण करें। कदापि ऐसा आचरण न करें, जो उन्हें कष्टप्रद हो और उन्हें रास न आए। हमारा यह अनुचित आचरण कभी भी उनके कोप का कारण बन सकता है और हमें अपने ही किये के कारण, दुःसह दुःख सहने को विवश कर सकता है। ऐसी स्थिति में हमारे बचाव का, उद्धार का कोई आधार शेष नहीं बचता। कारण कि **संत के हते कउ रखै न कोइ।** वैसे भी यह तो कर्म का सिद्धांत ही है, कि जैसा कर्म करेंगे, वैसा ही फल पायेंगे। इसमें कहीं कोई भी रियायत का प्रश्न नहीं है। फिर भी संतजन करण–कारण समर्थ होते हैं। अतः ऐसे में यदि हम अपनी भूल को स्वीकार करके पुनः उनकी शरण में आएँ और

अपने अनुचित आचरण के लिये क्षमा–याचना करें, तो सदा सम–शीतल संतजन हमें पुनः अपनी शरण में स्वीकार कर लेते हैं और हमें क्षमा प्रदान करके, हमें संमार्ग प्रशस्त करते हैं। श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज अपने वचनों में इस बात को स्वीकार करते हुए कहते हैं–

'संत के दोखी कउ अवरु न राखन हारु,
नानक संत भावै ता लए उबारि।'

इसी प्रकार संत सांईं आसूदाराम साहिब जी के दरबार के पास एक शेख जाति की बाई जी रहती थी, जो वक्त–बे–वक्त दरबार के पास कपड़े धोया करती थी। जिसका गंदा पानी दरबार में प्रवेश करता था। संतों ने कई बार उसे समझाया, कि ऐसा करने से दरबार में गंदगी फैलती है और काई जमा हो जाती है, जिससे कभी भी कोई फिसल सकता है और चोट खा सकता है। किन्तु कई बार समझाने के बाद भी उसने संतों की बात को सुना–अनसुना कर दिया। एक दिन बाई फिर वहीं पर कपड़े धो रही थी। इतने में सन्त अनायास ही वहाँ आ पहुँचे और बाई को वहीं पर कपड़े धोते हुए देखकर कहा, *''माता, इतना समझाने पर भी तुम्हें कुछ समझ में नहीं आया। अरे, अगर यहाँ से हटकर, थोड़ा–सा आगे, वहाँ कपड़े धोवोगी, तो क्या फर्क पड़ जाएगा?''* इस पर ही बाई जोर से बोल पड़ी, कि मेरी मर्जी, मैं चाहे जहाँ पर कपड़े धोऊँ। आखिर संतों को आवेशयुक्त स्वर में कहना पड़ गया, *''माता, दूसरों का अहित चाहने वाले का, कभी हित नहीं हुआ। यह तुम गलत कर रही हा, इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।''*

इतना कहकर सन्त जी वहाँ से चले गए। कुछ समय पश्चात् उस बाई की दशा अत्यंत गम्भीर हो गई। उसके शरीर में कीड़े पड़ गए। अन्ततः उसे अत्यधिक कष्ट भोगने पड़े।

ड्रिजु संत जी जाति खां,
जहिंजो वचन तिखो आ कात खां।
ड्रिजु संत जी जुबान खां,
जहिंजो वचन तिखो आ कान खां।।

अर्थात्– संत के वचन तलवार एवं तीर से तीक्ष्ण होते हैं, अतः हमें उनके ऐसे वचनों से बचकर रहना चाहिए।

इसी प्रकार भाई नामदेव, सुपुत्र श्री हरदासमल जी, संतों के सतत सेवाधारी थे। उनका झुकाव सदैव संत–सेवा की ओर रहता था। वे सदैव स्वामी जी की सेवा में तत्पर रहते थे। नामदेव जी अपने भाई मंघिरमल जी के साथ, उनकी दुकान पर काम भी करते थे एवं संतों की सेवा भी। सेवा के कारण कभी–कभी दुकान पर जाने में देर हो जाया करती थी, जिससे उनके भाई उनपर बहुत नाराज हुआ करते थे। एक दिन भाई नामदेव जी स्वामी जी को कुएँ पर नहला रहे थे, तब उनके भाई अत्यन्त क्रुद्ध हुए वहाँ पहुँचे और नामदेव जी को खरी–खोटी सुनाने लगे, कि सारा दिन यहीं पड़े रहते हो, काम का कोई ख्याल नहीं रहता। आखिर तुमने संतों में देखा ही क्या है ? इस प्रकार वह अनाप–शनाप बकने लगे। इतना सुनकर भाई नामदेव जी ने अपने भाई को शांत रहने हेतु कहा और अपनी सीमा में रहने की ताकीद की। तब सन्तों ने, जो भाई नामदेव जी से अगाध प्यार करते थे, कहा, *''भाई ! इसके कहने का बुरा मत मानो। पागलों की बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता है।''*

ईश्वर की लीला ऐसी हुई कुछ समय पश्चात् ही मघिरलाल जी स्वयं पागल हो गये। अतः विद्वानों ने जीव मात्र को समझाया है, कि वे संतों के समक्ष सदैव अदब से पेश आएँ। सिंध के प्रसिद्ध सूफी संत श्री शाह अब्दुल लतीफ ने, अपने शब्द में भी, संतों से इस प्रकार विनय की है और कहा है–

साहिब तू सुबहान, तोखे चारो नाहें चवण जो।
वसन्दड़ शहर वीरान करीं, के वसाएं वहण।।
कहिंखे दाम न बकिशीं दमड़ी, कहिंखे माया डों तूं मण।
कहिंखे बेक न बक्शें बकरी, कहिंखे घणी बक्शे धण।
कहिंखे सुम्हांरी सेज पंलगनि ते, कहिंखां पीहाएं पंहण।
अज ते लाहनु तहणं डकनि लिंग 'लतीफ' जा।

अर्थात्– हे नाथ ! आप सर्व–समर्थ सुल्तान हैं, हम आपकी गति का क्या भेद पा सकते हैं ! आप चाहे तो नगर का नगर वीरान करदें, चाहें तो जंगल में मंगल करलें। यह आप की लीला है। कोई एक कौड़ी के लिये मोहताज है, तो कोई अपार धन से दबा जा रहा है। कोई फूलों की सेज पर सोता है, तो कोई चक्की पीसता है। हे स्वामी! आपका यह खेल देख कर 'शाह लतीफ' कहते हैं, कि मेरे अंग थर–थर काँप रहें हैं।

इसी प्रकार बतलाते हैं, कि स्वामी जी की दरबार से लगी हुई दीवार के पास एक दरवेश कोराई रहता था। उसने अपने घर में बनी दुकान पर आटे की चक्की लगाई थी। वैसे तो आटे की चक्की का शोर ही उन दिनों बहुत था। इस पर उसने अपनी चक्की पर एक लोटी लगवाई थी। लोटी बन्दूक की भाँति आवाज करती थी, जो दूर–दूर तक सुनाई देती थी, जिससे लोगों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित होता था। उसके कारण दरबार के मेहमान–गृह में अत्यधिक शोर होता था। पहले तो संतों ने उस व्यक्ति को दो–तीन बार प्रेम पूर्वक समझाया, *"भाई ! आप यह लोटी हटवालें। इसकी आवाज के कारण अतिथियों के आराम में बाधा पहुँचती है। अतिथि ईश्वर के रूप होते है।"* किन्तु उसने संतों की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया, उल्टे वह संतों पर हावी होते हुए बोला, कि चक्की मेरे घर में लगी हुई है, आपके नहीं,

चक्की मेरी है, चाहे जो करूँ ! संतों ने फिर समझाते हुए कहा, *''अच्छा ऐसा करें, कि लोटी मत हटवाओं, मेरी विनती मान लो, कि चक्की दोपहर में न चलाकर, सुबह के वक्त चलाया करो, जिससे दोपहर में आराम कर रहे लोगों को भी कोई कष्ट न हो।''* कोराई ने फिर संतों को मुंह पर जवाब देते हुए कहा, कि यह मेरा काम है, मैं जब चाहे चक्की चालू करूं और जब चाहे बन्द करूं। इसमें आपकी मर्जी नहीं चलेगी। अन्ततः सन्तों को सहज स्वर में कहना ही पड़ा, ''यह तुम स्वयं के लिए अच्छा नहीं कर रहे हो।''

इतना कहकर सन्तजी चले गए। बस फिर क्या था, उसी दिन उसकी चक्की खराब हो गई, उसके स्थान पर उसने नई चक्की लगवाली, वो भी खराब हो गई। आखिरकार चक्की बन ही नहीं पाई। अन्ततः उसने परेशान होकर, वह मशीन वहाँ से हटवाकर दूसरे गाँव में लगवा ली। वह मशीन वहाँ पर भी नहीं चल पाई। निराश होकर उस कोराई ने चक्की का काम ही बन्द कर दिया तथा अंत में कोराई की दशा बहुत दयनीय हो गई। श्री शिव जी रामायण में माँ भवानी से कहे हैं, ''हे उमा ! साधु–पुरूषों का अनादर सब कल्याण का नाश कर देता है।''

साधु अवज्ञा तुरत भवानी, कर कल्याण अखिल कै हानी।

पन्नो आकिल निवासी भाई गोकुलदास जी बतलाते हैं, कि उन्हें किशोरावस्था में खेलकूद में बड़ी रुचि थी। वे अपनी पू. माताजी की प्रेरणा से संतों की सेवा–सान्निध्य में आये। उन्होंने वहीं के निवासी पू. महाराज श्री शीतलदास जी से हिंदी की शिक्षा ग्रहण की। तदुपरांत वे एक सज्जन पुरूष के संग में संत सांईं आसूदाराम साहिब जी की शरण में आये। वे नित्यनियम से संतों की सेवा में हाजिर होते थे, प्रायः वे रात्रि के बारह–एक बजे तक संतों की सेवा–सत्संग में रहा करते थे।

भाई गोकुलदासजी सन् 1953 का एक प्रसंग बतलाते हैं, कि उनकी सरकारी भाँग एवं अफीम की दुकान थी। अतः एक बार उनके यहाँ एक निरीक्षक निरीक्षण करने आया। उसने हिसाब का रजिस्टर देखते हुए कहा, कि आप बिक्री कम बताते हैं। उत्तर में उन्होंने कहा, कि जितनी बिक्री होती है। उतनी बताते है। तब उसने पूछा गया, कि कौन–कौन भाँग ले जाते हैं? उन्होंने उसे हर संभव जानकारी दे दी। तब वे कहने लगे, कि संत बाबा आसूदाराम साहिब जी के यहाँ भी रोज भाँग पिलाई जाती है? मैंने उसे स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा, कि वहाँ रोज भाँग नहीं, परन्तु ठंडाई का प्रसाद भक्तों को पिलाया जाता है। अस्तु, उस निरीक्षक के मन में कुछ दुर्भावना थी, अतः वह सीधा संतों की दरबार गया और स्वयं के द्वारा रखी भाँग के आधार पर संतों पर अवैध भाँग रखने का झूठा प्रकरण बना आया। संत आसूदाराम साहिब जी सदा समस्थित थे, अतः वे शांतचित् रहे। ईश्वर की ऐसी लीला हुई, कि झूठा प्रकरण बनाने वाले उस निरीक्षक को, शीघ्र ही उसकी दुर्भावना का फल भुगतना पड़ा और अंततः वह पश्चाताप की आग में जलता रहा। सच ही कहा है–

संत के दोखी की पुजै न आसा।
संत के दोखी उठि चलै निरासा।।

यहाँ एक बार पुनः यह कहना उचित होगा, कि संतों के प्रति किये गये अनुचित व्यवहार का, जीव को फल भुगतना ही पड़ता है। यह जीव भला कब अपनी ऐसी हरकतों से बाज आया है? मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम जी, जो बड़े दयालु और दीनों पर सदैव स्नेह करने वाले हैं, उन्हीं को इन्द्रदेव के पुत्र **जयन्त** ने अपनी दुष्टता का परिचय दिया और कौआ बनकर मंदबुद्धि जयंत ने माता सीता जी के पाद–पद्मों में चोंच मारी।

उसकी दुष्टता का फल स्वयं प्रभु ने उसकी एक आँख फोड़कर उसे दिया।

अति कृपालु रघुनायक, सदा दीन पर नेह।
ता सन आइ कीन्ह छलु, मूरख अवगुन गेह।।

सच्चे सन्तजन सदैव राग द्वेष से रहित रहते हैं। वे न कभी डरते हैं न डराते हैं–

'भय काहू को देत नहीं, नहीं भय मानत आन।'

यदि हम संतों के अंतःकरण में और अधिक झाँकने का प्रयास करें, तो देखेंगे, कि वे तो जीव मात्र से भय के स्थान पर, अपार स्नेह रखते हैं और क्योंन अपार स्नेह करेंगे? आखिर सब में वे अपने ही प्रभु को, अपने ही स्वरुप को जो निहार रहे हैं। यही कारण है, कि ऐसे शांत–स्वरूप संतों से निकलने वाले प्रकाश के सम्मुख आने से, हिंसक–से–हिंसक जीव एवं मनुष्य भी अपने हिंसक स्वभाव को त्यागकर, शांत भाव को प्राप्त होते हैं। तनिक विचार करें, कि कितना अगाध प्रेम भरा होगा, ऐसे संतों के हृदय में? हे प्रभु! हमें सदैव ऐसे पावन संतों के दर्शन और सेवा का सौभाग्य प्रदान करें, जिनके संग की इच्छा सुर–नर–मुनि सबको रहती है–

ताका संग बाछहि सुर देव,
अमोघ दरस सफल ताकी सेव।
कर जोर नानक करे अरदास,
मोहि सन्त टहल दीजै गुणतास।।

एक बार का प्रसंग भाई गोकुलदास जी बतलाते हैं, कि एक दिन संध्या के समय स्वामी जी और मैं जंगल के रास्ते से जा रहे थे, अचानक मेरी दृष्टि हमसे कुछ कदम आगे फन फैलाये हुए काले नाग पर पड़ी। ऐसे में मेरा डरना स्वाभाविक था। मैंने

डरते हुए अधीरतापूर्वक स्वामी जी से कहा, कि प्रभु ! सामने साँप फन फैलाये हुए बैठा हुआ है। तब धीरजमना स्वामी जी ने अविचल भाव से कहा, *"बालक, डरो मत, हाथ जोड़कर नमस्कार करो। साँप अपने आप चला जायेगा।"* संतों की आज्ञा से मैंने ऐसा ही किया। ईश्वर की लीला, वह सर्प अविलम्ब रास्ता छोड़कर झाड़ियों में चला गया। यह देख मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। मैं मन–ही–मन इस रहस्य को समझने की चेष्टा करने लगा। वास्तव में सच्चे सन्तजन तो प्रत्येक जीव मात्र में अपने प्रभु को ही निहारते हैं।

'अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे।'

यह बात भारत विभाजन के तुरन्त बाद की है। उन दिनों फिरका परस्ती का बुखार बड़ी तेजी पर था और हिन्दु और मुस्लिम परस्पर एक दूसरे को प्रायः नफरत और बदले की निगाह से देखते थे। दोनों समुदायों को उन दिनों अनेक प्रकार के जहर के कड़वे घूँट पीने पड़े थे। अतः यों कहें, कि वे एक–दूसरे के खून के प्यासे थे। ऐसे में एक दिन सांईं आसूदाराम साहिब जी पन्नो आकिल से अपने गाँव जतोइन लौट रहे थे। मार्ग सुनसान था, सामने से एक मुसलमान आ रहा था, जिसके कंधे पर कुल्हाड़ी एवं सिर पर खून सवार था। उसने सामने हिन्दू संत को आते हुए देखकर क्रोध से उन्हें मारना चाहा। अचानक ईश्वर की लीला ऐसी हुई, कि उसका चिलमिलाता हुआ चेहरा ठंडा पड़ गया और वह शांत भाव से आगे बढ़ गया। वस्तुतः यह सब संतों के भीतर समाये हुए निरवैर भाव का प्रत्यक्ष प्रभाव था। जिसने उसकी हिंसक वृत्ति को शांत भाव में बदल दिया। दूसरे शब्दों में प्रभु अपने प्यारों की हर घड़ी, हर पल रक्षा करता है, और जुग–जुग में करता रहेगा।

हरि जुग–जुग भगति उपाइआं,
पैज रखन्दा, आया राम राजे।
हरिणा कश दुष्ट हरि मारिआ,
प्रहलाद तराइआ राम राजे।

भाई गोपालदास खेमाणी दीपो मलाणी जी संत आसूदाराम साहिब जी के सतत सेवादारी रहे हैं। उन्होंने संतों की चरण–शरण में उनकी कई लीलायें देखीं हैं और उनके महान् प्रताप को प्रतिक्षण अनुभव किया है। वे बतलाते हैं, कि पहले–पहल वे पिताफी स्थित संत राजाराम साहिब जी के शरण में थे। उनकी सेवा में उन्हें पाँच माह बीत गये थे। एक रात्रि को स्वप्न में संत आसूदाराम साहिब जी ने दर्शन दिये। अगले ही दिन वे संत राजाराम साहिब जी से आज्ञा लेकर पन्नो आकिल संत आसूदाराम साहिब जी की शरण में उपस्थित हुए। संध्या का समय था, उन्होंने पहले–पहल संतों के चरणों में प्रसाद रखकर, विनम्र भाव से माथा टेका। संतों ने फरमाया, *''भाई ! आ गये?''* तब उन्होंने कहा, *''जी हाँ सांई।''* तब संतों ने तत्काल उनसे कहा, *''जाओ, जाकर गोशाला में गाय बाँध आओ।''* वे गये, किन्तु गाय और बछड़े ने उन्हें अन्दर आने नहीं दिया। वे लौटकर संतों के पास आये। संतों ने उनसे पूछा, *''भाई ! गाय बाँध आये ?''* तब उन्होंने कहा, कि सांई ! गाय अन्दर आने ही नहीं दे रही है। तब संतों ने उन्हें अपने हाथ की बकुली देते हुए कहा, *''जाओ, यह ले जाओ और उसे बांध आओ।''* संतों की आज्ञा से उन्होंने ऐसा ही किया। इस प्रकार संतों ने आते ही उन्हें काम सौंपा। कहने का तात्पर्य यह है, कि संतों ने उन्हें सेवा–कार्य सौंपकर, अपनी शरण में स्वीकार कर लिया। धन्य है ऐसे सेवक जिन्हें सद्‌गुरु के दर्शन–दीदार–सेवा नसीब होती है।

जिन सतगुर पिआरा देखिआ, तिन कउ हउं वारी।
जिन गुर की कीती चाकरी, तिन सद बलिहारी।।

इसी प्रकार भाई गोपालदास जी बतलाते हैं, कि श्री स्वामी जी घट–घट जानने वाले प्रभु थे। उनसे हमारा भूत और भविष्य तनिक भी छिपा हुआ नहीं था। वे हर व्यक्ति के मन की बात को जान लेते थे। कई बार उनके कहे बिना ही ,उन्हें उनके सवाल का उत्तर दे देते थे। भाई गोपालदास जी बतलाते हैं, कि एक रात्रि को स्वामी जी सत्संग कर रहे थे। मैंने मन–ही–मन यह इच्छा की, कि आज स्वामी जी मेरी पंसद का **'अपने गोपाल को लाल बढ़िया'** वाला भजन सुनायें। कुछ ही मिनटों के पश्चात् अन्तर्यामी स्वामी जी ने यह भजन आरम्भ किया। ऐसी थी, उनकी सर्वव्यापकता एवं भक्त वत्सलता।

तूँ समरथ तूँ है मेरा स्वामी,
सभु किछु तुम ते, तू अंतर जामी।
पारब्रह्म पूरन जन ओट,
तेरी सरणि उधरहि जन कोट।।

इसी प्रकार संत आसूदाराम साहिब के शरण में ऐसे कई दम्पत्ति आये, जो संतान सुख से वंचित थे। जिन्हें संतों ने संतान सुख से सिंचित किया। संतों के पास चारों पदार्थों अर्थात् धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष के भंडार भरे हुए थे। अतः संत आसूदाराम साहिब जी की शरण में जो कोई भी शुद्ध मनः कामना से आया, उसने वैसी ही मुरादें पायी ! श्री अर्जुन देव जी महाराज ने संतों के इस सामर्थ्य को देखकर फरमाया है–

चारि पदारथ जे को मांगे, साध जना की सेवा लागे।

पन्नो आकिल निवासी हकीम श्री गुरुनोमल चेटूमल जी भाई रूपचन्द जी के बड़े भ्राता को कोई संतान न थी। उन्होंने कई जगह मनौती मानी थी, किन्तु कहीं से भी उसकी आस पूर्ण नहीं हुई थी। अतः वे बहुत दुःखी रहते थे। वे सदैव यही सोचा करते थे, कि उनकी मुराद आखिर कहाँ पूर्ण होगी ? अचानक एक दिन वह छाछ का कटोरा एवं ज्वार की रोटी लेकर संत

आसूदाराम साहिब जी के शरण में आये। उस समय उनके मन में यह प्रबल धारणा थी, कि ये संत चाहें, तो मेरी इच्छा निःसंदेह पूर्ण कर सकते हैं। अतः मन–ही–मन उन्होंने संतों से इस प्रकार विनती की –

महिर संदा मींह शाह, वसाई शल।
भुरियल मुहिंजी झूपड़ी, कींन झले झल।
काहिल ते कहल, कंदे शाल करीम तूँ।।

अर्थात्– हे सांई ! आप मुझ पर कृपा की अपार वर्षा कर दें। हाँ, मेरी झोपड़ी तो सब ओर से टूटी जा रही है, अर्थात् मेरे धीरज का बाँध सब ओर से टूटता जा रहा है। अतः हे नाथ ! ऐसे में इस निर्बल को अविलम्ब आधार देकर उबार लें।

संत आसूदाराम साहिबजी रिद्धि–सिद्धि के स्वामी थे। संतों ने उन्हें गद्गद् हृदय से आशीर्वाद दिया और कहा, *"जाओ भाई ! तुम्हारी मनः कामना पूर्ण होगी।"* संतों के आशीर्वाद के फलस्वरुप भाई गुरुनोमल जी को शीघ्र ही दो पुत्र–संतानें प्राप्त हुई। जिनके नाम भाई कन्हैयालाल एवं हिरदाराम हैं, जो वर्तमान में रायपुर निवासी हैं और संतों के श्रद्धालु शिष्य हैं।

साचे साहिबा, किआ नाहीं घरि तेरे।
घर त तेरे सभु कछु है, जिस देहिं सु पावइ।।

इसी प्रकार घोटकी निवासी भाई रतनराम जी को कोई संतान न थी। उन्होंने भी कई जगह मनौती मानी थी। अन्ततः वे पन्नो आकिल में संत आसूदाराम साहिब जी की शरण आये। उन्होंने वहाँ के भाई मूलोमल जी के साथ व्यवसाय चालू किया। भाई रतनराम जी संतों की सेवा में आया–जाया करते थे, यह बात भाई मूलोमल जी को नहीं सुहाती थी। एक दिन संतों ने रतनराम जी से कहा, *"तुम अपना अलग काम चालू करो।"* संतों की इच्छानुसार भाई रतनराम जी छोले बेचकर अपना जीवन

यापन करने लगे। वे पहले दरबार आकर संतों को आग्रह पूर्वक छोले खिलाया करते थे। संत आसूदाराम साहिब जी भी उनके प्रेम के वशीभूत होकर, उनका मन रखने के लिये, कुछ छोले प्रसाद–रूप में स्वीकारते थे। अन्ततः संतों की अपार कृपा भाई रतनरामजी पर हुई, जिसके फलस्वरूप उन्हें एक पुत्र सन्तान प्राप्त हुई। बतलातें हैं, कि भाई रतनराम जी की धर्म–पत्नी पूरी तरह बाँझ थीं, किन्तु संतों की अहेतु कृपा से उन्हें माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

मन मेरे तिन की ओट लेहि,
मनु तनु अपना तिन जन दहि।
जिनि जिनि अपना प्रभु पछाता,
सो जन सरब थोक का दाता।।

बतलाते हैं, कि संत श्री आसूदाराम साहिब जी के छोटे भ्राता श्री खीअलमल जी को पहली पुत्र संतान प्राप्त हुई। उस अवसर पर घर में खुशियाँ मनाई गईं। ईश्वर की लीला कुछ ऐसी हुई छठी के दिन (छठवें दिन) ही बालक का देहान्त हो गया। जिसका सब घरवालों को और खीअलमल जी एवं उनकी धर्म–पत्नी को गहरा दुःख हुआ। संत आसूदाराम साहिब जी दया के सागर थे, उनका हृदय दूसरो का दुःख देखकर, दुःखी होता था और सुख देखकर, सुखी होता था। वे मन, वचन, कर्म से सदैव परोपकार में लीन रहते थे।

पर उपकार वचन, मन, काया, संत सहज सुभाउ खगराया।

संतों ने अपने छोटे भाई को धीरज देते हुऐ कहा, *“भाई! दुःखी मत हो, ईश्वर बड़ा महान् है। तुम उस पर भरोसा करके तो देखो! वह कैसे तुम्हारा घर–आँगन बच्चों की किलकारियों से भर देता है।”* संतों के आशीर्वाद से प्रभु ने भाई खीअलदास जी को पाँच पुत्र सन्तानें प्रदान कीं। तभी तो कहा है–

'जेवड़ आपि तेवड़ि तेरी ड़ाति।'

अर्थात्– हे प्रभु ! जितने महान् आप हैं, आपकी बख्शीश भी उतनी ही बड़ी है।

एक रात्रि को एक चोर संतों के स्थान से दो गायें चुराकर ले गया। जब संतों का ध्यान इस बात की ओर दिलाया गया, तो संतों ने धीरज रखने और आगे देखते रहने को कहा। पेराडू ने प्रातः गाय के खुरों के निशानों से गायों को पास के गाँव 'पवारनि' में ढूंढ निकाला, साथ ही उस चोर को भी, जो गायें चुरा ले गया था। चोर का नाम 'मीरो बलोच' था, उसने अपना गुनाह स्वीकार किया तथा बतलाया, कि रात को किसी अलौकिक शक्ति ने मेरी आँखों की रोशनी ही कुछ देर के लिये खतम कर दी थी और मैं जंगल में भ्रमित हुआ, गायों को बीच रास्ते में ही छोड़कर चल दिया।

संत का दोखी अधबीच ते टूटै।
संत का दोखी कितै काजि न पहुँचे।।
संत के दोखी कउ उदिआन भ्रमाईऐ।
संत का दोखी उझड़ि पाइए।।

वर्तमान में झाँसी चिरगांव निवासी भाई कक्कूमल होतूमल जी उन सेवाधारिओं में से एक हैं, जिन्हें संत श्री आसूदाराम साहिब जी की सतत् सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूर्व में अमल दादलगारी एवं मीरपुर माथेलो निवासी कक्कूमल जी अल्सीराम मारवाड़ी नामक दरवेश की सेवा करते थे। एक दिन उनकी मौसी, जिन्हें एक महाराज का आवेश आता था, उन्होंने श्री कक्कूराम जी से कहा, *''तुम पन्नो आकिल जाकर उन संतों की शरण लो, जिनकी सेवा आपके भाई वापारीमल जी किया करते हैं, वे पूर्ण संत हैं। उन्हीं की सेवा में ही आपका जीवन सफल होगा।''* किन्तु भाई कक्कूमल जी संकोच–वश वहाँ नहीं

जा पाए। कुछ दिनों पश्चात् जब वे ईश्वर की तस्वीरों के आगे माथा टेक रहे थे, तब उन्होंने एक सफेद वस्त्र धारी संत को सामने खड़ा पाया, जो उनसे कह रहे थे, *''हम, पन्नो आकिल के वासी हैं, तुम महाराज जी के कहने पर भी वहाँ नहीं आए।''* दूसरे ही दिन भाई कक्कूमल जी प्रसाद लेकर पन्नो आकिल गए, उनके आश्चर्य की कोई सीमा ही नहीं रही, जब उन्होंने उन संतों को प्रत्यक्ष वहाँ पाया, जिन्होंने रात को उन्हें दर्शन दिए थे।

जैसा कि भाई कक्कूमल जी मीरपुर में किराणे की दुकान चलाते थे और अत्यधिक व्यस्त रहते थे। उसके उपरान्त भी वे कई–कई दिन निरंतर संतों के दरबार में आकर रहा करते थे। वे तन–मन–धन से संत–सेवा में निमग्न रहते थे। यहाँ तक कि रात–रातभर जागकर, संतों के आदेश की प्रतीक्षा भी करते थे। संत श्री ऐसे अनन्य सेवक के सदैव अंग–संग साथ रहते थे। संतों ने भाई कक्कूमल जी की अनेक अवसरों पर रक्षा भी की और उन्हें कष्टों से उबारा भी। भाई कक्कूमलजी ने संतों के संग रहकर उनकी कई लीलाएं देखीं एवं अनुभव कीं। वे सदैव उनके सेवा–सान्निध्य की चाह रखते थे–

तुम्हारी टेक पूरे मेरे सतिगुर, मन सरनि तुम्हारै परी।
अचेत अयाने बारिक नानक हम तुम राखो धारि हरी।।

इसी प्रकार जतोइन के मास्टर रूपचंद जी एक सच्चे गुरु–भक्त एवं संत–सेवी पुरुष थे। सेवा तो उनके रोम–रोम में समायी हुई थी। ऐसे सेवाभावी भक्त के प्रति संत बाबा आसूदाराम साहिब जी का स्नेह भी कुछ कम न था। शरीर से अस्वस्थ रहने वाले भाई रूपचंद जी का एक अजीब नियम था, वे प्रातः–सवेरे उठकर अपने गाँव की सब गलियाँ झाड़ू लगाकर साफ किया करते थे। एक बार उनके गाँव में पहली बार आये भाई मेघराज

जी ने उन्हें इस प्रकार गलियाँ साफ करते देखकर उनसे इसका कारण पूछा, तो भाई रूपचंदजी ने उन्हें बड़ा ही सुन्दर एवं संक्षिप्त उत्तर दिया, कि मुझे ऐसी सेवा करने की आज्ञा हुई है और मैं यह सेवा कर रहा हूँ। इससे अधिक मुझे कुछ मालूम नहीं है। आप इस विषय में अधिक मेरे स्वामी श्री आसूदाराम साहिब जी से ही पूछ सकते है। अस्तु, वे प्रातः उक्त सेवा उपरान्त स्नान आदि से निवृत्त होकर सीधे संतों के पास आते और उनकी सेवा करते तत्पश्चात्, वे अपनी ड्यूटी पर स्कूल चले जाते थे। इस प्रकार उनका दूसरा नियम यह था, कि वे रोज श्री स्वामी जी को स्वयं अपने हाथों से भोजन कराते थे वक्त–वत्सल स्वामी जी भी उन्हें रोज शीत–प्रसादी देकर कृतार्थ किया करते थे। अनन्य प्रेमी भाई रूपचंद जी अपने अस्वस्थ शरीर के मद्देनजर श्री स्वामी जी से सदैव यही प्रार्थना किया करते थे, कि हे स्वामी! अंत समय आप मेरे नजदीक रहियेगा और इसी प्रकार अपनी शीत–प्रसादी खिलाकर, मुझे बिदा कीजियेगा। उनकी इस प्रार्थना पर सदा दयाल स्वामी भी उन्हें सदैव धीरज देते रहते थे

एक दिन संयोग से संत श्री आसूदाराम साहिब जी को अपनी गुरु दरबार रहिड़की साहिब, संत कँवरराम जी के निर्वाणोंपरान्त पहली होली पर, जाना पड़ा। अतः वे तत्काल रहिड़की रवाना हो गये। पीछे उसी दिन भाई रूपचंद जी का स्वास्थ्य अचानक बिगड़ गया और अंततः उसी रात्रि को ही उनकी अपने स्वामी के दर्शन की चाह में अन्तिम साँसें चलने लगी।

नाथ माहिं अबकी बेर उबारो,
तीन लोक के तुम प्रति पालक, मैं तो दास तिहारो।
मौ को ठौर नहीं अब कोऊ, अपना विरद सम्हारो।।

श्री स्वामी जी जब कभी रहिड़की दरबार जाते थे, तो उन्हें प्रायः वहाँ कई दिन लग जाते थे, किंतु इस बार उन्होंने

उसी रात ही सद्गुरु सांईं कँवरराम साहिब जी ने प्रातः अपने गाँव लौटने की अन्तरिम आज्ञा दी और प्रातः होते ही बिना विलम्ब किये, वे अपने गाँव जतोइन की ओर चल दिये। उधर भाई रूपचंद जी के परिजनों ने भी एक आदमी स्वामी जी की ओर भेजा, किंतु स्वामी जी उसे जतोइन गाँव के बाहर ही आते मिल गये। उसने स्वामी जी को भाई रूपंचंद जी की गम्भीर स्थिति के विषय में बतलाया, तो अंतर्यामी संतों ने उससे कहा, *''भाई, हमें पहले ही ज्ञात है।''* तब वे सीधे भाई रूपचंद जी के घर आये, जहाँ भाई रूपचंद जी का शरीर पवित्र गोबर के लेप में रखा था। सर्व समर्थ स्वामी आसूदाराम साहिब जी ने अपने विरद् एवं वचन का पालन करने हेतु अपने प्यारे सेवक भाई रूपचंद जी को तीन बार पुकारा। तीसरी बार पुकारने पर भाई रूपचंद जी उठ बैठे और उन्होंने अपने सामने अपने सर्वस्व अर्थात् स्वामी को पाकर गद्गद हृदय से नमन किया और शीत–प्रसादी के लिये प्रार्थना की। भक्त–वत्सल स्वामी ने अपने जेब से पेड़े का प्रसाद निकाल कर भाई रूपचंदजी को दिया। श्री रूपचंद जी ने विनती की, *''स्वामी ! इसे पहले स्वयं खाकर फिर मुझे देने का कष्ट करें।''* तब स्वामीजी ने उनकी इच्छानुसार, वह पेड़ा पहले स्वयं खाकर, फिर उन्हें अपने शीत–प्रसाद स्वरूप वह पेड़ा खाने को दिया। भाई रूपचंद जी ने बड़े प्रसन्न मन से वह प्रसाद खाकर, अब संतों से सत्यलोक जाने की आज्ञा मांगी, जिसे संतों ने यह कहते हुए स्वीकार किया, *''अच्छा प्यारे, आपको सतगुरू अपने चरणों में रखेंगे।''*

बाबुल मेरा वडु समरथा, करण कारण प्रभु हारा।
जिस सिमरत दुःख कोई न लागे, भउजल पारि उतारा
आदि जुगादि भगतनि का राखा,
उसतति करि करि जींवां।
नानक नामु महारसु मीठा,
अनुदिनु मनि तनि पींवां।।

इस प्रकार एक स्वामी–भक्त ने, अपने स्वामी के पावन दर्शन करते हुए, उनके सान्निध्य में, अपने प्राण अपने प्राणनाथ को समर्पित कर मुक्ति पायी। साथ ही एक समर्थ स्वामी ने, अपने अनन्य सेवक को, अपने वचनानुसार, अंत समय उपस्थित होकर, अपने विरदू का पालन किया और उसे भवसागर से पार उतारा।

जब शिष्य सही सार ग्रहण करने योग्य हो जाता है, तब समर्थ सद्‌गुरु शिष्य की ग्रहिता को अपने अनुपम ज्ञान से भली भाँति जान कर, शिष्य को सार तत्व ग्रहण करने का सदुपदेश देते हैं। हाँ, यहाँ एक बात और बड़े महत्व की यह है, कि ऐसे समर्थ सत्पुरुष उस सार वचन को ह्रदय में उतारने का सामर्थ्य भी, शिष्य को प्रदान करते हैं। ऐसे ही कुछ प्रसंग, पूर्णपद प्राप्त हुए पिता और सार–ग्राही पुत्र के मध्य भी यदा–कदा उपस्थित होते थे।

इसी प्रकार भाई गोविन्दराम टेऊँमल जी सन् 1960 का एक प्रसंग सुनाते हैं, साई चाँड्रूराम ने स्वयं बताया, कि एक दिन फैजाबाद (भारत) में रेडियो सिलोन पर, पूज्य भगत कँवरराम साहिब के भजनों के रिकॉर्ड बज रहे थे। पूजनीय श्री चाँड्रूराम साहिब उन्हें सुनने में मगन थे। इधर श्री संत आसूदाराम साहिब ने श्री चाँड्रूराम साहिब के विषय में पूछा, कि वे कहाँ है ? सेवाधारी ने उन्हें उनकी जानकारी दी। जब श्री चाँड्रूराम साहिब पू. भगत साहिब के भजनों की रिकॉर्ड सुनकर लौटे, तो एक तत्ववेता पिता ने अपने सार–ग्राही पुत्र को अतिशय मार्मिक वचन कहे, *''आप परमपूज्य अमर शहीद को दिल के अन्दर में रखो, अर्थात् उन्हें अपने ह्रदय मन्दिर में विराजमान करो।''* आज अपने पूज्य पिता के ऐसे ही मार्मिक वचनों को स्मरण कर भाव–विह्वल हुए, परम पुरुषार्थी पुत्र अपने पिता श्री के प्रति कृतज्ञ भाव से भर जाते हैं और मन–ही–मन कह उठतें है–

ओ, मूखे मूँ पिरियनि जा, पल–पल पूर पवनि।
ओ, पहिरियूँ कुरभ डई कुट्टे कीमो कयो।
पोइ बाहि बारे भुञों, लाल कयो।
से 'लाल' करे अग वेन्दा वञनि।
ओ मूखे मूँ पिरियनि जा पल–पल पूर पवनि।
तिनि सजणनि जी सिक कहिंसा सलियां।
जेके उथन्दे–वेहन्दे यादि अचनि।
ओ, मूखे मूँ पिरियनि जा, पल–पल पूर पंवनि।

संतों के उपरोक्त मार्मिक वचनों का भाव गुरुवाणी में कुछ इस प्रकार किया गया है–

अंतरि गुरु आराधना, जिह्वा जपि गुरु नाउ।।
नेत्री सतिगुरु पेखणा, सर्वणी सुनणा गुर नाउ।।

गुरुवाणी में श्री गुरुनानक देव जी फरमाते हैं–

देंदा दे लैदे थक पाइ, जुगा जुगान्तर खाही खाहिं।

ऐसे ही एक प्रसंग ने डहरकी निवासी, भाई गोविन्दराम टेऊमल जी बतलाते हैं, कि मैंने और भाई माणिकमल पिरतूमल जी ने मिलकर 1950 के लगभग अनाज व्यवसाय आरम्भ किया। इस अवसर पर, मैं सद्गुरु सांई आसूदाराम साहिब को विनय पूर्वक अपनी नयी दुकान पर ले आया। संत श्री उन दिनों रहिड़की से डहरकी पधारे थे। उन्होंने हमारी दुकान पर पधार कर हमें कृतार्थ किया और साथ ही एक या दो आने देकर फरमाया, *"ये नये कपड़े में बाँधकर गल्ले में रख दो और इन्हें गल्ले से निकालना मत।"* हमनें उनकी आज्ञा का भली–भाँति पालन किया। संतों के आशीर्वाद से हमारा काम बहुत अच्छा चल पड़ा और हम शीघ्र ही अच्छे सम्पन्न हो गये। मेरे भागीदार भाई माणिकमल जी ऐसे कल्याणकारी संतों पर बलिहारी होते

हुए प्रायः मुझसे कहते रहते थे, कि ऐसे सच्चे संतों को बार–बार यहाँ लाया करो। उन्हीं के आशीर्वाद से हमारा भाग्य चमका है।

तू दाता दातार, तेरा दित्ता खावणा।
तूँ दाता दातार, तेरा दित्ता खावणा।

इस प्रकार संत आसूदाराम साहिब जी को, जब कभी भी कोई भक्त ऐसे अवसरों पर अपने यहाँ प्रेम पूर्वक आमंत्रित कर ले आता था, संत उन्हें इसी प्रकार अपने पैसे देकर, उन्हें गल्ले में रखने की आज्ञा देते थे। आज उनकी कृपा से संपन्न एवं समृद्ध ऐसे अनेक परिवार हैं, जो आज भी संतों की ऐसी पावन कृपा को स्मरण करते हैं एवं उनके प्रति कृतज्ञ भाव रखते हैं। भाई पेसूमल राजोमल जी अपने सम्मुख घटी एक घटना के विषय में बतलाते हैं, कि एक बार होली के अवसर पर एक दस वर्षीय बालिका दरबार साहिब के कुएँ में गिर गई। यह देखकर उसके सगे–सम्बंधी रोने–चिल्लाने लगे। तब संत श्री आसूदाराम साहिब जी ने उन्हें धीरज देते हुए कहा, *''आप कुछ क्षणों के लिए शांत रहें और सद्गुरु पर भरोसा रखें, ईश्वर सब ठीक करेगा।''* तब संतों ने सेवाधारियों को आज्ञा दीं, कि एक मंजी (छोटी खटिया) रस्सी के सहारे कुएँ में उतारें। मंजी को कुएँ में उतारा गया। कुछ ही क्षणों में वह बालिका मंजी पर बैठकर बाहर निकल आई। अब बालिका से उसके सगे–सम्बंधियों ने पूछा, कि तुम अन्दर कैसे जीवित बची रही ? तब बालिका ने बतलाया, कि उसे एक दाढ़ी वाले बाबा, अर्थात् संत आसूदाराम साहिब जी, गोद में लिए बैठे थे। इस प्रकार सर्व–समर्थ संतों ने अपने द्वार आई बालिका को मौत के मुँह से बचाकर, उसके सगे–सम्बंधियों को लौटाया। ऐसी थी उनकी भक्ति की शक्ति, जो जल–थल–नभ, अर्थात् दसों दिशाओं में व्याप्त थी।

अगम अगोचर अलख अपारा,
चिंता करहु हमारी।
जल–थल महीअलि भरिपुरि लीणा,
घटि–घटि जोति तुम्हारी।

जब संत सांईं आसूदाराम साहिब जी पहले–पहल अपने गुरु दरबार रहिड़की आये थे, उसके तीन वर्ष पश्चात् उनके पिता श्री लुधड़ोमल जी परलोक सिधार गये। सुख–दुःख में सम सांईं आसूदाराम साहिब जी ने जब यह समाचार सुना, तब वे पूर्णतया शांत चित रहे। वे भली–भाँति जानते थे, कि रिश्ते–नाते, सगे–संबंधी आदि सब प्रारब्ध के अधीन होते हैं, इनके लिये हर्ष–शोक, चिंता–मोह करना व्यर्थ है। श्रुति कहती है–

'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।'

अर्थात्– ज्ञान होने पर शोक और मोह का नाश हो जाता है।

'तैसा हरख तैसा उस सोग, सदा आनन्द तिह नहीं वियोग'

भाई पोपटमल ड्राढूमल जी बतलाते हैं, कि अंतर्यामी स्वामी श्री आसूदाराम साहिब जी ने, अपनी देह त्याग के लगभग दो–तीन वर्ष पूर्व ही, मुझे उस स्थान की ओर संकेत किया था, जहाँ भविष्य में संतों की समाधि स्थापित होनी थी। हुआ यों कि उस स्थान में पूर्व में एक छोटी–सी कोठी बनी हुई थी, जहाँ एक मेघवाड़ सूअर का माँस लाकर बेचा करता था। तब एक दिन मैंने संतों से कहा, कि स्वामीजी ! आप आज्ञा करें, तो इस कोठी की साफ–सफाई करें। कारण कि यहाँ मेंघवाड़ सूअर का माँस लाकर बेचा करता है। तब संतों ने कहा, *"भाई ! तुम इस बात का विचार मत करो। कोई समय आयेगा, जब यह स्थान सबके लिए पूजनीय होगा।"*

संत आसूदाराम साहिब की वचन–शक्ति के विषय में उनके एक शिष्य बतलाते हैं, कि एक समय दरबार साहिब में बहुत से लोग सत्संग में बैठे थे। उनके लिए प्रसाद एवं एक मटका सूखो–सेसा अर्थात् ठंडाई तैयार की गई। मैंने लोगों की संख्या देखते हुए संतों से शंका प्रकट की, कि स्वामीजी ! मटका भर ठंडाई पूरी नहीं होगी। अतः आज्ञा हो, तो और ठंडाई तैयार की जाये। संतों ने शांत रहने और देखते रहने को कहा। मेरे आश्चर्य का तब ठिकाना ही नहीं रहा, जब मैंने देखा, कि संतों की कृपा से सब लोगों ने ठंडाई का प्रसाद पाया, फिर भी मटके में ठंडाई शेष बची रही।

वैसे यह तो एक अवसर की बात ठहरी। सच्चे संतों के जीवन में ऐसी लीलाएँ तो पग–पग पर होती रहती हैं। जहाँ–जहाँ भी संतजन के पैर पड़ते हैं, वहाँ–वहाँ अनेकानेक भक्तजनों की भीड़ लग जाती है। तब ऐसे अनेक अवसर आते हैं, जब उनके रहने, खाने–पीने आदि की सब व्यवस्था ऋद्धि–सिद्धि स्वयं उपस्थित होकर करती है। भला संतजन सारे विश्व का भरण पोषण करने वाले विश्वभर के सेवक जो ठहरे।

विश्वंभर जीवन को दाता, भगति भरे भंडार।
जाकी सेवा निफल न होवत, खिन महि करे उद्धार।।

सन् 1959 की एक बात का जिक्र करते हुए भाई पोपटमल जी संत श्री आसूदाराम साहिब जी की वचन–शक्ति और संकल्प–शक्ति के विषय में बतलाते हैं, कि एक दिन दरबार के एक सेवाधारी कक्कूमल जी पाकिस्तान से भारत आ रहे थे। तब संध्या के समय, मैंने संतों से निवेदन किया, कि प्रभु ! आज्ञा हो तो भाई कक्कूमल जी से मिलने स्टेशन पर चले। तब संतों ने फरमाया, *''पहले दिशा से निवृत्त हो आयें, फिर चलते है।''* मैंने विनय की, कि स्वामीजी ! गाड़ी का समय हो गया है। तब संतों

ने फरमाया, *"भाई ! जब संतों के प्यारे बाहर जाते हैं, तब गाड़ी लेट होती है।"* अप्रत्यक्ष रूप से संतों का भाव यह था, कि जब तक हम उनसे मिलने स्टेशन नहीं जायेंगे, तब तक गाड़ी नहीं जायेगी। हुआ भी वैसा ही, जब संत जी दिशा से निवृत्त होकर एवं हाथ–मुँह धोकर स्टेशन पर पहुँचे, तब गाड़ी के छूटने में अभी कुछ देर बाकी थी।

जीअ जंत सभ सरणि तुम्हारी, सरब चिंत तुधु पासे।
जो तुधु भावै, सोई चंगा, इक नानक की अरदासे।।

भाई पोपटमलजी बतलाते हैं, कि संत श्री आसूदाराम साहिब सादगी और सफाई की प्रत्यक्ष मूर्ति थे। उनकी दृष्टि सहज ही सब ओर निरीक्षण कर लेती थी। एक बार उन्होंने हमें दरबार की सफाई करने की आज्ञा की। सब ओर सफाई करने के पश्चात् हमसे गलती वश समाधि साहब की ओर का एक कोना साफ करना छूट गया। सफाई के उपरान्त संतों ने हमसे पूछा, *"भाई ! सब ओर सफाई हो गई ?"* तब हमनें कहा, कि जी हाँ सांईं। तब वे तत्परता से उठे और उस स्थान पर ले आये, जहाँ सफाई करनी छूट गई थी। इस प्रकार संतों की दृष्टि सहज ही सब निरीक्षण कर लेती थी।

इसी प्रकार भाई तीर्थराज वालूमल जी बतलाते हैं, कि संत आसूदाराम साहिब जी को स्वच्छता बहुत पंसद थी। वे प्रायः चाँद (चंद्र–दर्शन) के दिन बाजार घूमने अवश्य निकला करते थे। मार्ग में उन्हें कहीं कूड़ा–करकट या विष्ठा आदि दिखती, तो वे फरमाते, *"भाई, ईश्वर को स्वच्छता बहुत पंसद है। मनुष्य को चाहिए, कि स्वयं भी स्वच्छ रहे और घर–आँगन एवं वातावरण को भी स्वच्छ रखे।"* और आगे वे कहते थे, *"जीवन में युक्ति रखना आवश्यक है, युक्ति से भक्ति प्राप्त होती है, भक्ति से मुक्ति।"* इस प्रकार वे बाहरी स्वच्छता पर तो बल देते ही थे, पर साथ

ही वे भीतरी, अर्थात् मन की स्वच्छता पर भी, बहुत बल देते थे। वे मन की स्वच्छता को ही ईश्वर मिलन का साधन मानते थे। कहा भी है–

कर दिल साफ तो साफ मिलई,
बिनु साफ न साहिब मिलन्दा है।
साढे तीन हाथ का बुत क्यों धोअन्दा,
दिल का दाग न धुअन्दा है।

इसी प्रकार श्री सामी साहिब जी भी फरमाते हैं–

सफाईअ जो सुख, कहिड़ो चवां मुख सां।
समुझी डिसु सामी चए, करे अंतर मुखु।
त कोटि जनम जो ड:खु, मिटी वञई मन मां।।

अपने पूज्य पिताश्री के योग्य सुपुत्र संत श्री चाँड्रूराम साहिब जी भी स्वच्छता एवं सुन्दरता के महान् पक्षधर हैं। फिर चाहे वह सुन्दरता एवं स्वच्छता मन की हो, विचारों की हो अथवा वातावरण की हो।

इसी प्रकार भाई तोताराम शामनमल जी बतलाते हैं, कि पहले हम पाकिस्तान स्थित "संगरार" में रहते थे तथा वक्त–बे–वक्त अपने कार्य से पन्नो आकिल आते थे। पन्नो आकिल आने पर वे प्रायः संत बाबा आसूदाराम साहिब के दरबार में माथा टेकने जाया करते थे। एक बार सदा दयाल संतों की पावन दृष्टि उन पर पड़ी। संतों ने उनसे नाम आदि पूछा। इस प्रकार वे शीघ्र ही उनकी प्रेम–डोर में बँधते चले गये। सन् 1954 में वे सपरिवार संगरार से स्थाई रूप से पन्नो आकिल आ बसे। इस बार जब वे दरबार साहिब में माथा टेकने पहुँचे, तो घट–घट के जाननेवाले संतों ने उनसे सहज–स्वभाव पूछा, *"भाई तोताराम जी, पन्नो आकिल घूमने आये हो, या हमेशा के लिए यहाँ बसने?"*

तब उन्होंने संतों को मुस्कराते हुए बतलाया, कि प्रभु! हमेशा के लिये यहीं बसने आये हैं।

इसी पन्नो आकिल निवासी भाई होलाराम कुन्दनदास जी संतों की अन्तर्यामिता के विषय में बतलाते हैं, कि भाई परमोमल जी सन् 1957 में हमारे पूरे परिवार को भारत ले जाने हेतु आये। हमने उन्हें बतलाया, कि हमारी दृढ़ आस्था संत बाबा आसूदाराम साहिब जी पर है। हम उनसे आज्ञा माँगेंगे, यदि वे आज्ञा करेंगे, तो हम आपके साथ चल सकेंगे, अन्यथा नहीं। अगले ही दिन हमने संतों के श्री चरणों में अपनी पूरी बात रखी तथा स्पष्ट किया, कि भगवन ! आप जैसी आज्ञा करेंगे, वैसा ही हम निर्णय लेंगे। हमारी सारी बात सुनकर और हम दासों की अटूट आस्था देखकर, सन्त श्री कुछ देर शांत रहे, फिर माला फेर कर उन्होंने फरमाया, *''भाई ! आप यहीं रहें। श्री सद्गुरु देव आपका कल्याण करेंगे, बच्चों की शादियों का योग भी यहीं लिखा हुआ है।''* इस प्रकार हमने उनके श्री मुख से इतना सुनते ही, भारत आने का अपना निर्णय हमेशा के लिए स्थगित कर दिया।

वाग॒ धणी तुहिंजे वसि, आँऊ का पाण वहीणी।

अर्थात्– हे स्वामी ! मेरी डोर तो आपके पवित्र कर–कमलों में है; मैं स्वयं तो कदापि खुदमुख्त्यार नहीं हूँ।

भाई होलाराम जी संतों की अन्तर्यामिता से सम्बन्धित, एक और वृत्तान्त कहते हैं, कि संत बाबा आसूदाराम साहिब जी को स्वयं के परलोक सिधारने की जानकारी पूर्व में ही हो गई थी। अतः भक्त–वत्सल स्वामी अपने सब प्रेमियों से अन्तिम बिदाई करने बारी–बारी से उनके स्थानों पर पधारे। मुझ दास की दुकान पर भी वे अपने देह त्याग से दो–तीन दिन पूर्व आये। वृद्धकाय श्री सद्गुरु देव को मैंने बैठने का बहुत आग्रह किया। किन्तु वे यह कहते हुए आगे अग्रसर हुए, *''भाई ! हम अब बैठने हेतु नहीं*

बल्कि 'हरि–हर' करने आयें हैं।'' संतों का संकेत हम तत्क्षण न समझ पाये और इसके दो–तीन दिन उपरान्त ही उन्होंने शरीर त्याग किया।

इसी प्रकार भाई जीवतमल जी बतलाते हैं, कि उनके पिता भाई टिंडिणमल जी नित्य प्रति संतों के दरबार में जाया करते थे। एक दिन जब वे दरबार साहिब पहुँचे, संत बाबा आसूदाराम साहिब 'आसा–दी–वार' का पाठ कर रहे थे। वे माथा टेककर, जैसे ही जाने लगे, तब संतों ने उन्हें हाथ के इशारे से बैठने को कहा। इस प्रकार दस–पन्द्रह मिनट का समय हो गया, वे पुनः घर चलने के लिए उठे। संतों ने उन्हें दुबारा रुकने का इशारा किया। तब वे समझ गये, कि जरूर कोई खास बात है। इस प्रकार संत जब पाठ से निवृत्त हुए, तब उन्होंने भाई टिंडिणमल जी को अनायास ही भविष्य का रहस्य बतलाते हुए कहा, *''वह स्थान* (जहाँ वर्तमान मे डे॒वरी साहिब है) *आने वाले समय में अनेक संतों के रहने एवं भक्तों की मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला होगा।''* उल्लेखनीय है, कि वहाँ पूर्व में एक कच्चा कमरा बना हुआ था। जिसमें दरबार के साजो–सामान आदि रखे रहते थे। भाई टिंडिणमल जी ने संतों के मुख से उपरोक्त वचन सुनकर कहा, कि भगवन् ! आपकी आज्ञा हो, तो इस स्थान का निर्माण तत्काल शुरू करें? संतों ने उत्तर दिया, *''नहीं, अभी कुछ समय शेष है।''* ईश्वर की लीला ऐसी हुई, कि दो सप्ताह बाद संतों ने शरीर का त्याग किया और उनके कथनानुसार, वही स्थान उनकी डे॒वरी साहिब के निर्माण के लिए चुना गया।

इसी प्रकार का इशारा संतों ने अपने श्रद्धालु भक्त भाई खीयलमल जी को भी दिया था, जिसका उल्लेख भाई राधोमल वेढ़ोमल जी ने किया है। भाई राधोमल जी, जो वर्तमान में दरबार साहिब के सतत् सेवाधारी हैं, वे बतलाते हैं, कि संत बाबा

आसूदाराम साहिब के देह–त्याग के पश्चात्, उठावन वाले दिन रात्रि को सब संत, पूज्य पंचायत, सब सेवाधारी एवं रहिड़की दरबार के तत्कालीन स्वामी श्री चंदीराम साहिब जी, सभी छत पर विराजमान थे। सब की सहमति से यह तय हुआ, कि संतों की ड॒वरी साहिब का निर्माण किया जाये। ईश्वर की लीला से समाधि साहिब के लिए उसी स्थान का चयन हुआ, जिस स्थान का इशारा संतों ने स्वयं किया था। संतों की आज्ञा से रात्रि में ही हमने उस स्थान को, जहाँ पूर्व में कच्चा कमरा था, समतल कर दिया।

अगले दिन प्रातः से सायं पर्यन्त हमने एक मुस्लिम ठेकेदार इलाही बक्श और मजदूर करीम बक्श से मिलकर एक ओर की दीवार का निर्माण पूर्ण किया। रात्रि में मैं वहीं सोया। भाई कुंगूमल जी, जो प्रातः चार बजे दरबार आया करते थे, आये। उन्होंने आते ही मुझे जगाया और कहा, कि भाई ! कल बनायी गई दीवार जमीन छोड़ कर गिरने को खड़ी है। मैं हतप्रभ रह गया। मैंने कहा, कि यह कैसे हो सकता है ? मैंने जाकर वस्तु–स्थिति देखी, वास्तव में दीवार गिरने को खड़ी थी। भाई कुंगुमल जी ने इस बात के रहस्य को समझाते हुए बतलाया, कि स्वामी जी ने इस कमरे के निर्माण के लिए हिन्दू कारीगर की बात कही थी।

भाई कुंगूमल जी ने सब वृतांत सुनाते हुए कहा, कि चंद रोज पूर्व मैं दरबार में आया, श्री स्वामीजी इसी स्थान पर विराजमान थे, पास ही पू. माता साहिब सिर दर्द से जमीन पर तड़प रही थीं। मैंने यह सब देख, संत बाबा आसूदाराम साहिब जी से दीनता पूर्वक प्रार्थना की, *“हे दीन बंधु स्वामी ! आप अपार दया के समुद्र हैं। आपने जगत कल्याण के हेतु ही देह धारण की है। हे अनाथों के नाथ प्रभु ! आपने अनेक निःसंतानों को सन्तानें दी हैं। निर्धनों को धन दिया है, अनेक दुःखियों के*

दुःख निवारे हैं। इस असहाय माता की भी पीड़ा को हरो, हे नाथ।''

सुनहु विनंती ठाकुर मेरे जीअ जन्त तेरे धारे।
राखु पैज नाम अपने की, करण करावन हारे।।
प्रभु जीउ खसमाना करि पिआरे, बुरे भले हम थारे।।

तब समर्थ स्वामीजी अपनी अहेतु कृपा का मेघ बरसाते हुए बोले, *''भाई ! शीघ्र ही इस स्थान का निर्माण हिन्दू कारीगर के हाथों होगा और तब यह स्थान अनेक दुःखियों के दुःख निवारण का साधन बनेगा। इस माता का दुःख भी तब वहाँ से पूरी तरह दूर हो जायेगा।''*

अस प्रभु दीन बन्धु हरि, कारण रहित दयाल।
तुलसीदास सठ ताहि भजु, छाड़ि कपट जंजाल।।

इस प्रकार सदा दयाल संतों नें अपने सत्य लोक सिधारने के पूर्व ही, संसार के त्रय तापों से संतप्त जीवों के संताप निवारण हेतु, एक चिरस्थायी साधन, जीवों को समर्पित किया। ऐसी थी उनकी भक्त–वात्सल्यता, जो भक्तों के दुःख एवं कष्ट निवारण के लिये आज एक आधार बनी हुई है। ऐसे परोपकारी, सदा दयालु अंतर्यामी, समर्थ संत बाबा आसूदाराम साहिब जी के पवित्र पाद–पद्मों में इस दासानुदास का बार–बार वन्दन ! कोटि–कोटि वन्दन !!

ψΨΨΨψ

अध्याय—16

महासमाधि

समय कब स्थिर रहा है? इसकी गति निरतंर आगे की ओर निर्बाध रूप से चलती रही है। यह कालचक्र न कभी रुका है और न ही कभी पीछे मुड़ा है। काल को रचकर, कितनी अजीब रचना, रचनाकार ने रची है, जिसने समस्त चराचर सृष्टि को उसके साथ ऐसा पिरोया है, कि सब काल के अधीन है। राम आये, परशुराम आये, कृष्ण आये, कश्यप आये, बुद्ध और महावीर आये, नानक और कबीर आये, अमीर और फकीर आये। किन्तु सब समय के साथ आकर चले गये, पीछे रह गया मात्र उनका कार्य और उस कार्य का प्रतिफल। इसी प्रकार संत आसूदाराम साहिब जी भी समय के साथ काल की इस गति के निकट पहुँचे। सन् 1957—1958 के करीब जब उन्होंने अपना अंत समय नजदीक जाना, तो उन्होंने अपनी लीला समेटनी आरम्भ कर दी। अपने शेष कार्य सम्पन्न करने में जुट गये। सन् 1958 में इन्हें मोतीजीरा (मुद्दे का बुखार) हुआ। एक दिन प्रातः 5 बजे सन्त अत्यंत कमजोरी के कारण बाह्यरूप से अचेतनता में प्राप्त हुए। यहाँ तक कि उनके प्राण भी अत्यंत ही क्षीण गति से चलने लगे। जिस कारण वहाँ उपस्थित सभी प्रेमियों—भक्तों एवं कुटुम्ब—परिवार वालों को ऐसा प्रतीत होने लगा, कि संतों ने प्राण त्याग दिये हैं। इस प्रकार कुछ समय तो इसी असमंजस में गुजर गया। उधर ईश्वर की ऐसी लीला हुई, की संत सांईं आसूदाराम साहिब जी ने इस अचेतनता की अवस्था में देखा, कि सद्गुरु सांईं सतरामदास साहिब जी अब उन्हें संसार त्याग करने की तैयारी करने को कह रहे हैं।

संत आसूदाराम साहिब जी ने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए अपने सद्गुरु संत सतरामदास साहिब से विनय की,

''भगवन् ! अभी बालक चाँडूराम अबोध अवस्था में है, यदि आप कुछ समय दें, तो बालक को नीति और धर्म की शिक्षा में निपुण करके, आपके श्री चरणों में आकर उपस्थित होऊँ।'' उनकी यह विनय सुनकर सद्गुरु सांईं सतरामदास साहिब जी ने सहर्ष उन्हें इसकी आज्ञा दी।

इधर कुछ देर बार जब संत आसूदाराम साहिब जी को पुनः चेतना प्राप्त हुई, तो सब भक्तजन एवं परिजन बहुत गद्गद् हुए। शीघ्र ही संत पूर्ण स्वस्थ होकर, अपने नित्य कर्म में लीन रहने लगे, बाहरी तौर पर सब कुछ सामान्य रूप से चलने लगा, किन्तु संत आसूदाराम साहिब अपने वचनानुसार, अपने शेष कार्य भीतर–ही–भीतर शीघ्र सम्पन्न करने में लग गये। जिनमें प्रमुख था, संत चाँडूराम साहिब जी को संगीत, धर्म, नीति आदि की शिक्षा दिलाकर, व्यवहार एवं परमार्थ में सोने–सा खरा तराशना। उन्होंने इसके लिए उन्हें परम पूज्य साईं केवलराम साहिब जी को सौंपा। साथ ही स्वयं भी समय–समय पर उन्हें उच्च–से–उच्च शिक्षा देते और गूढ़–से–गूढ़ परमार्थ के रहस्यों से अवगत कराते रहते और साथ ही अपनी अलौकिक कृपा दृष्टि से उनके भीतर ऐसा सामर्थ्य भी पैदा करते, जिससे वे उसे धारण करने में समर्थ हो सके।

संत इस जगत के कल्याण के निमित्त ही अवतरित होते हैं। अतः एक ओर जहाँ उनके हृदय में प्रभु–परमात्मा के लिए अगाध प्रेम, श्रद्धा, भक्ति भरी रहती है, वहीं दूसरी ओर इस संसार–सागर के दुःखी प्राणियों के लिए अपार करुणा भी भरी रहती है। सच्चे संत की मात्र एक यही चाह रहती है, कि ये दुःखी प्राणी, इन दुःखों से छुटकारा पाकर, ईश्वर के सच्चे शाश्वत् सुख का आस्वादन करें। अतः वे नित्य–निरंतर जगत् के प्राणीमात्र को ईश्वर के सच्चे प्रेम की ओर प्रेरित करते रहते हैं।

इसी तारतम्य में संत श्री सांईं आसूदाराम साहिब जी अपने जीवन के अंतिम क्षण भक्तों, प्रेमियों, शरणागतों के कल्याण–साधन में समर्पित कर दिये। अतः इन दिनों उनका पल–पल अपने भक्तों को सच्ची शिक्षा देने में गुजरता था। ऐसे समय उन्होंने भारत स्थित अपने भक्तों को दर्शन लाभ देना भी उचित समझा। अतः उन्होंने शीघ्र ही पासपोर्ट तैयार करवाकर, अपने पुत्र एवं रूहानी अमानत के वारिस सांईं चाँडूराम के साथ, भारत यात्रा की। भारत में उनके भक्तों द्वारा उनका बहुत ही स्वागत–सत्कार किया गया। भक्तों के आमंत्रण पर वे अपना विरद जानकर, अपनी तकलीफ का तनिक भी विचार न कर, शहर–शहर, गाँव–गाँव जाकर, उन्होंने भक्तों को दर्शन लाभ दिया। वे मन–ही–मन समझ रहे थे, कि यह उनका, उनके प्यारों से प्रत्यक्ष रूप से मिलन का अंतिम अवसर ही है। अतः संत किसी को भी निराश नहीं करना चाहते थे। संत आसूदाराम साहिब जी सरल स्वभाव के धनी एवं आडम्बर से दूर थे। अतः उनके आगमन से भक्तों पर किसी भी प्रकार का विशेष बोझ नहीं पड़ता था। संत आसूदाराम साहिब जी को अनेक स्थानों पर उनके भक्तों ने बहु–भांति अनुनय–विनय करके, भारत में भी अपना स्थान स्थापित करने का अनुरोध किया। यहाँ तक कि रायबरेली के पंचों ने संतों को वहाँ नवनिर्मित दरबार साहिब स्वीकारने का अनुरोध भी किया। भक्तों के अगाध प्रेम एवं श्रद्धा को देखकर संत आसूदाराम जी ने भारत में अपना स्थान स्थापित करने का उनका अनुरोध स्वीकार किया और कहा, *''अभी नहीं। किन्तु हाँ, वे समय आने पर भारत में अवश्य ही अपना स्थान स्थापित करेंगे और भक्तों की इच्छा को पूर्ण करेंगे।''*

संत आसूदाराम साहिब जी की यह यात्रा, एक ओर जहाँ अपने भक्तों एवं सेवकों को दर्शन लाभ देने हेतु थी, वहीं दूसरी ओर यों कहिये, कि वे अपने रूहानी वारिस श्री सांईं चाँडूराम

साहिब जी को अपने भक्तों से परिचय कराने एवं आगे चलकर उनका भार उठाने हेतु भी थी। वे बालक चाँड्रूराम साहिब जी को अपने साथ रखकर, प्रत्यक्ष रूप से उन्हें उस कार्य को करने की शिक्षा एवं प्रेरणा प्रदान कर रहे थे, जो उन्हें बहुत शीघ्र ही संभालना था। अपने पिता के गुणग्राही, सुपात्र पुत्र ने भी इसे ग्रहण करने में कोई कसर शेष नहीं रखी। वे अपने पिता के सारे उत्तरदायित्वों को भविष्य में उठाने हेतु कृत संकल्प थे। संत सांईं आसूदाराम साहिब जी ने भारत–यात्रा के समय, भारत स्थित तीर्थ–स्थलों की भी यात्रा की। भारत–यात्रा के दौरान संतों की मुलाकात अपने गुरुभाई संत श्री दीवान करमचन्द साहिब से भी हुई। गोरखपुर में दोनों संतों का आपस में मधुर मिलन हुआ। उन दिनों संत श्री दीवान करमचन्द साहिब जी गोरखपुर में रहते थे। दोनों संत परस्पर मिलकर अति प्रसन्न हुए। विनम्रता की प्रतिमूर्ति संत श्री दीवान साहिब जी ने संत सांईं आसूदाराम साहिब जी एवं संत सांईं चाँड्रूराम साहिब जी का स्वागत सत्कार किया। सिंध के शिरोमणि संत भगत कँवरराम साहिब जी की पावन एवं महत्ती कृपा से परमपद को प्राप्त दोनों महान् विभूतियाँ परस्पर मिलकर बीते दिनों की उन मधुर स्मृतियों में खो गयीं, जो उन्होंने अपने परम पूज्य श्री सद्‌गुरु देव की चरण–शरण में व्यतीत की थीं। इस प्रकार संत आसूदाराम साहिब जी अपने जीवन की अंतिम भारत यात्रा 6–7 माह में पूर्ण करके, पुनः पाकिस्तान अपने स्थान पर पधारे।

भारत से लौटने के पश्चात् संत सांईं आसूदाराम साहिब जी पुनः शेष कार्यों को सम्पन्न करने एवं अपने भक्तों, प्रेमियों, सेवकों को सन्मार्ग प्रशस्त करने में लग गये। वे हर आने–जानेवाले श्रद्धालुओं को बड़े विनम्र भाव से जीवन के यथार्थ–सत्य की शिक्षा देते। उन दिनों मानों उनके रोम–रोम से प्रेम की अविरल धारा निकलकर बहा करती थी। जिसके सम्मुख

आनेवाले सब भक्तगण ईश्वरीय रस से सींचे जाते थे। कोई भी उससे वंचित नहीं रह पाता था। यही नहीं जैसे–जैसे संत आसूदाराम साहिब जी के परलोक यात्रा के दिन नजदीक आने लगे, वैसे–वैसे वे अधिके–से–अधिक समय ईश्वरीय रस में निमग्न रहने लगे। संसार के प्रति वैराग्य बुद्धि तो उन्हें आरम्भ से ही थी। वे बाहरी तौर पर भले ही सबके साथ उठते–बैठते, सदुपदेश करते, किन्तु भीतर–ही–भीतर उनके हृदय का तार ईश्वर की प्रगाढ़ भक्ति से जुड़ा रहता था। उन्हें पल–पल अपने स्वामी, अपने सदगुरु का स्मरण भावमुग्ध करने लगता था। सद्गुरु प्रेम की इस भावावस्था में मानो उन्हें सद्गुरु के मिलन के प्रथम क्षण से अंतिम क्षण तक के एक–एक दृश्य आंखों के आगे आने लगते, जिन्हें देख एवं स्मरण करके, वे अपने सद्गुरु की प्रेम–बाढ़ में और बहे चले जाते थे। उनका रोम–रोम ऐसे सद्गुरु के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने लगता था। क्योंकि उन्होंने ही उनके अनन्त जन्मों की साधना का सुफल प्रदान कर उन्हें कृत–कृत्य कर दिया था।

''बलिहारी गुरु आपणे, दिउहाड़ी सदवार।
जिनि माणस ते देवते किए, करत न लागी वार।।''

इधर बालक चाँड्रूराम साहिब जी भी, अपनी बाल्यावस्था के बावजूद, शीघ्र–अतिशीघ्र उन सब विद्याओं में महारत हासिल करने लगे, जो उन्हें दी जा रही थीं। जैसे गायन, वादन, हिन्दू धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि। इस समय उनकी उम्र मात्र 12–13 वर्ष की ही थी। कहना न होगा, कि पूर्व जन्म के संचित संस्कारों से पूर्ण बालक चाँड्रूराम साहिब जी के हृदय में, ईश्वर का प्रकाश विद्यमान था। अतः वह उनके विद्या अभ्यास में प्रमुख सहायक है। साथ ही उन पर सद्गुरु सम, अपने समर्थ पिता की अपार कृपा दृष्टि तो थी ही, जिनकी महान् कृपा को स्मरण कर वे आज भी अपने पिता श्री के प्रति कृतज्ञता में भावविभोर हो उठते

हैं, जिन्होंने उन्हें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य के भंडारों से परिपूर्ण कर दिया।

ऐहड़ी केरु करे, सामी बिना सत्गुरुअ।
भक्ति–ज्ञान–वैराग जा, ड भण्डार भरे।।
अनभय ज्योति अन्दर में, सुतह सिद्ध बरे।
पलक न थिए परे, रमता राम अखिन खां।।

इस बीच संत सांईं आसूदाराम साहिब जी ने एक–दो अवसरों पर, प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से, अपनी समाधि साहिब के स्थान और उनके निर्माण की प्रक्रिया की ओर इशारा कर दिया था, जिसका वर्णन प्रसंग अनुसार अलग से किया गया है। साथ ही, इससे कुछ दिन पूर्व, संत अपने गाँव स्थित सब सेवकों के घर एवं दुकानों आदि पर जाकर, अंतिम मेल–मिलाप कर आये थे। ऐसे में कुछ सेवकों ने जब उनसे बैठने एवं जलपान आदि करने को कहा, तो संतों ने स्पष्ट रूप से कहा, *''भाई ! अब हम बैठने नहीं आये, हम तो विदा लेने आये हैं।''*

अगस्त 1960 के अंतिम दिनों में संत आसूदाराम साहिब जी ने अब अपना अंत समय अत्यंत निकट जाना। अतः एक दिन उन्होंने अपने सेवक भाई गोकुलदास जी को अपने पास बिठाकर, आने वाली संगत के लिए आचार–संहिता लिखवाई, यथा, *''सेवक को प्रातः सायं दो समय दरबार में माथा टेकने अवश्य आना चाहिए, दरबार में सिर ढँककर आना चाहिए, हिन्दू धर्मानुसार जनेऊ, चोटी, टोपी आदि अवश्य धारण करने चाहिए, सेवक को दरबार साहिब की सेवा में हाथ बँटाना चाहिए, दीन–दुःखी और जरूरतमंद की सेवा, सहायता अवश्य ही करनी चाहिए आदि।''*

साथ ही संतों ने दरबार की दीवारों पर सफेदी और फर्शों की मरम्मत आदि की आज्ञा भी की। इसके पश्चात् संतों ने भाई

गोकुलदास जी एवं श्री सांईं चाँड्रूराम साहिब जी के गले एवं गोदी में आशीर्वाद स्वरूप चादर एवं गमछा ओढ़ाया। इस बात के तीन–चार दिन पश्चात्, संतों का स्वास्थ्य अचानक बिगड़ गया। डॉक्टरी इलाज से कोई लाभ न देखते हुए, अंततः एक तबीब का परामर्श लिया गया। तबीब साहिब द्वारा लिखी दवाइयाँ खरीदने के लिए संतों ने अपने वारिस सुपुत्र सांईं चाँड्रूराम साहिब जी को दवाई के लिए पैसे निकालने के लिए खजाने की चाबियाँ दीं। पैसे निकालने के बाद, जब उन्होंनें चाबियाँ अपने पूज्य पिताजी को लौटानी चाहीं, तो उन्होंने उन्हें उनके पास ही रखने को कहा। यह देख उपस्थित सभी स्तब्ध हो गये और सहज ही समझ गये, कि संत अब सत्य–लोक में जाने का निश्चय कर चुके हैं। संत जानते थे, कि अब उनका इलाज हकीमों–तबीबों के पास नहीं है, न हीं वे उनके मर्ज को जान समझ सकतें हैं। उनके मर्ज का इलाज तो अब मात्र सद्‌गुरु एवं ईश्वर के दर्शन ही हैं–

मुहिंजो दारूं दवा, तुहिंजो दीदार आ,
ड॒खारणु हकीमनि खे बेकार आ।
दवा कान थींदी मुहिंजे दर्द जी,
हकीमनि के केहड़ी खबर मर्ज जी।।
इहो कहिड़े किस्म जो बीमार आ,
मुहिंजो दारूं दवा, तुहिंजो दीदार आ।

संतों के ऐसे निर्णय को एवं उनकी नाजुक स्थिति को देखकर, घर–परिवार के सब सदस्य और सब भक्त, अत्यन्त शोकाकुल थे। ऐसे में उनके सुपुत्र बालक सांईं चाँड्रूराम साहिब की मनःस्थिति का अनुमान तो सहज ही लगाया जा सकता है।

इधर पन्नो आकिल, और आस–पास के गाँवों के भक्तों को संतों की नाजुक स्थिति का समाचार मिल चुका था। अतः

शहर भर के भक्तगण ऐसे पावन संतों के अंतिम दर्शन एवं आशीर्वाद पाने हेतु दरबार साहिब पहुँच चुके थे। वे सब मन–ही–मन नाना प्रकार से संतों से अरदास, प्रार्थना, आशीर्वाद की याचना कर रहे थे। उनमें से कुछ भक्तजन ऐसे भी थे, जो मन–ही–मन ऐसे निर्मल, परोपकारी, दीन–दुःखियों के आधार एवं दुःख, सुख में कर्णधार संत से भी अभी कुछ समय और अपने बीच रहने के लिए प्रार्थना कर रहे थे, ऐसे में मानो भक्तों ने अपने हृदय के सब बाँध खोल दिये हों और वे मानों संतों से इस प्रकार भावमयी विनय कर रहे हों –

छो वञण जी वाट निहारीं थो,
छोन दिलबर गड्‌ गुजारीं थो।
हित–हुत जडहिं तूँ ही आहीं,
पोइ छो दिलबर डरो मटाई थो।
छोन दिलबर गड्‌ गुजारीं थो..
,कोई संगी–साथी भले न थींदो
पर छो दिलबर दिल ऐडो, लाहीं थो।
छोन दिलबर गड्‌ गुजारीं थो..
भलि नेठि त हलणों सभखे पवन्दो,
पोइ छोन घड़ी पल गड्‌ गुजारीं थो।
छोन दिलबर गड्‌ गुजारीं थो..
ऐडो कहिड़ो डोहु थी वयड़ो
जो झटि–पटि पासो मटाईं थो।
छोन दिलबर गड्‌ गुजारीं थो..
गाफिल 'गुल' गफिलत में गुजारे,
छो दीन खे दाग लगाईं थो।
छोन दिलबर गड्‌ गुजारीं थो।

(क्रस)

किन्तु संतों का मन अब अपने सद्गुरु और ईश्वर से मिलने एवं दर्शन के लिए अधीर हो रहा था।

बिन देखे रघुनाथ पद, जीअ की जलन न जाई ।

अतः वे चाह कर भी अपने भक्तों की ऐसी प्रार्थना को स्वीकार न सके और उन्होंने सत्यलोक जाने के अपने निर्णय को कायम रखा। जिसका आभास उसी दिन शाम के समय ही हुआ, जब संत अपनी नाजुक स्थिति के बावजूद, आज खाटपर से उठ बैठे और बड़े ही करूण स्वर में, ईश्वर से इन शब्दों में गुहार करने लगे–

कमली वाले मोरे सांई, दिखाना मैनू दर्श जरूरी आ।
नरसिंग रूप प्रभू ने बनाया,भक्त प्रहलाद नूं आन बचाया।
द्रोपदी की लाज रखना।
दुर्योधन का मेवा त्यागे, सांग विदुर घर खाना।
भीलनी के झूठे बैर, सुदामे के तंदुल रूचि भोग लगाना।
वृन्दावन की कुंज गलिनि में, माखन लिकि छिप खाना।
यमुना के तीरे धीरे धेनु चरावे, बंसरी की टेर सुनाना।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन कउ,
चित चरण कमल संग लाना।

ईश्वर की स्तुति में, संतों के मुखारविन्द से निकलने वाला यह अंतिम भजन था, जो मात्र भजन नहीं, किन्तु उस प्रभु–परमात्मा से एक दर्द भरी पुकार थी, जिसके विषय में, श्री मद्भगवद् गीता में प्रभु ने अपने भक्तों को यह वचन दिया है, कि जो मनुष्य अन्तकाल में मुझे जिस भाव से स्मरण करेगा वह उसे अवश्य प्राप्त करेगा।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यंते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः। (गीता ८/६)

अंततः धीरे–धीरे स्वास्थ्य सुधार के स्थान पर गिरावट आती गयी। सब सेवक जन एवं परिजन मूकभाव से, मात्र विवश बनकर, यह सब निहार रहे थे। कारण कि वे इससे अधिक कर ही क्या सकते थे ? ईश्वर की करनी एवं विधान के समक्ष यह जीव विवश है। वह चाह कर भी कुछ नहीं कर पाता।

इधर संत आसूदाराम साहिब जी की आवाज बन्द हो गयी। किन्तु उनकी अन्तःचेतना निरन्तर ईश्वर एवं सद्गुरु चिंतन में लगी हुई थी। अंततः आज दिनांक 4 सितम्बर 1960, रविवार प्रातः संत सांई आसूदाराम साहिब जी ने अपने रूहानी वारिस सुपुत्र श्री चाँड्रूराम साहिब जी को मूक भाव से, एक बार पुनः अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा, उसके उपरान्त उन्होंने सारी साध–संगत पर करूण दृष्टि से देखकर, अनन्त की ओर निहारा। मानों वे नीचे का पैगाम भक्तजनों के हित में देकर सत्यलोक की ओर जा रहे हों।

उथिया अजु आशिक, पैगाम ईहो डई
हलऊं था होत डे, पुठियां चाँड्रू अथेई।
संगति विचि वेही, रखन्दो नंग नींगरनि जो।। (दास)

अर्थात– आज आशिकजन संगत को यह पैगाम देते हुए चल पड़े हैं, कि हम अपने मालिक की ओर जा रहे हैं, पीछे (चाँड्रूराम जी) हैं, जो संगत के साथ बैठकर, संगत की सार–सम्भाल लेते रहेंगे।

इसके पश्चात् करीब प्रातः सवा आठ बजे, वे अपने मन–प्राण ईश्वर एवं सद्गुरु के चरणों में अविचल भाव से स्थित करके, सदा–सर्वदा के लिए अनन्त ज्योति में विलीन हो गये।

''सूरज किरण मिली, जल का जल हुआ राम।
ज्योती ज्योति रली, सम्पूर्ण थिया राम।।''

संत सांईं आसूदाराम साहिब जी के सत्यलोक सिधारने की खबर बिजली की भांति पास–पड़ोस एवं दूर–दराज के सब साधु–संतों एवं भक्तों को लग गयी। यथाशीघ्र अनेक स्थानों से संतजन एवं भक्तजन पन्नो आकिल संत के दरबार में आने लगे। पन्नो आकिल एवं आस–पास के गांवों में कारोबार बंद रखा गया। सांईं चाँड्रूराम साहिब सहित सभी स्वजन–परिजन अत्यन्त शोकमग्न थे। हर ओर अजीब–सी खामोशी छाई हुई थी, इस खामोशी के बावजूद, संतों की अंतिम क्रिया की तैयारियाँ होने लगीं। सब अजीब मौन में डूबे, विवश मन से संतों के पार्थिव शरीर पर पुष्प, फूलमाला, श्रीफल, दुपट्टे, चादर (रूमाल–पाखर), प्रसाद आदि चढ़ाकर उनके पाद–पद्मों में अश्रुपूर्ण नेत्रों से अंतिम प्रणाम करने लगे। इसके पश्चात् संतों के पार्थिव शरीर की अंतिम यात्रा पूर्ण सम्मान के साथ निकाली गई। इस यात्रा में पूरा जिला, बूरा एवं उसकी तहसीलें, शहर एवं पास–पड़ोस के हजारों भक्तजन, सेठ–साहूकार, जमींदार एवं अनेक मुस्लिम गणमान्य लोग शामिल थे। संतों के पार्थिव शरीर को सारे शहर से परिक्रमा कराने के पश्चात् साधुबेला शमशान भूमि पर लाया गया। जहाँ वैदिक रीति से अंतिम–क्रिया सम्पन्न करायी जाने लगी। इस समय सब भक्तों के चेहरे मुरझाये हुए थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने–अपने भाव से संतों के शोक में डूबा हुआ था। सांईं चाँड्रूराम साहिब जी की मनोदशा अवर्णनीय थी। उनके मन में अपने परम आदरणीय पिता के बिछोह का अत्यंत दुःख था। यद्यपि वे बालक थे, तथापि वे ज्ञानवान थे, अतः वे संसार के इस शाश्वत् सत्य को धैर्यपूर्वक स्वीकार करने में यत्नशील थे। उन्हें पिता ही सही, पर एक संत चरित्र, एक महामानव, एक दिव्य–पुरुष के प्रत्यक्ष रूप से, हमेशा के लिए बिछुड़ने का दुःख, आंसू लाने से न रोक सका और अंततः उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली।

अखिनि खे उदास जो, अज॒ ड॒ाढो ड॒ख थियोमि।
आयो आबु अजीब लाइ, तड॒हिं पतो पयोमि।
केचिन खे रोकण जो मां, ड॒ाढो वसु कयोमि।
तालिब मौला तलब में, पल्ले पांदु विधोमि।
चरियुनि खे चयोमि, तबि रहियूँ कीन रोअण खां।

वे मन–ही–मन यह सोच रहे थे, कि अब ईश्वर ही जाने, फिर कब उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त होगा–

पत्ता टूटा डाल से, ले गयी पवन उड़ाय।
अबके बिछड़े कब मिले, जाने कौन हवाय।।

इधर वैदिक रीति से अंतिम–क्रिया को अंतिम रूप देते हुए, अंततः बालक सांईं चाँड्रूराम साहिब सहित, चारों कांधियों ने संतों के पार्थिव शरीर को मुखाग्नि देते हुए, अग्नि को समर्पित किया और इस प्रकार उनका पंचभूती शरीर, पंचतत्वों में विलीन हो गया।

पाँच तत्व को तन रचो, जानहु, चतुर सुजान।
जिहते उपजिओ नानका, लीन ताहि मैं मान।।
जग रचना सब झूठ है, जान लेहु रे मीत।।।
कह 'नानक' थिर ना रहे, ज्यों बालू की भीत।।।।

दरबार साहिब में संतों के देवलोक सिधारने के उपलक्ष्य में गुरूग्रंथ साहिब का पाठ आरम्भ किया गया। साथ ही अन्य धार्मिक कार्यक्रम भी आरम्भ हो गये। पन्नो आकिल दरबार साहिब में भक्तों, प्रेमियों, सेवकों के साथ ही सिंध के कोने–कोने से सन्तजन, संत आसूदाराम साहिब जी के बारहवें के कार्यक्रम में भाग लेने आ पहुँचे। जिनमें प्रमुख थ पिताफी से सांईं गोविन्दराम साहिब, घोटकी से सांईं बहरूराम साहिब, ड॒हरकी से सांईं केवलराम साहिब और भगत मूलचन्द जी महाराज, मूलण

सिकरन्ड वाले एवं अन्य संतजन, साथ ही सद्‌गुरु संत सतरामदास साहिब, अमर शहीद भगत कँवरराम साहिब के पावन रहिड़की दरबार साहिब से सद्‌गुरु सांई सतरामदास साहिब के नाती श्री भाई चन्दीराम साहिब जी पन्नो आकिल दरबार साहिब पधारे। सब 'अमर कीर्ति संत सांईं आसूदाराम साहिब जी' के परलोक सिधारने पर दुःखी थे, किन्तु वे ज्ञानवान जानते थे कि–

कबीरा संत मुए किआ रोइये, जो अपने गिरह को जाय।
रोईये साकत बापुड़े, जो हाटे–हाट बिकाय।

उपस्थित सब संतों के हृदय में सांईं चाँड्रूराम साहिब जी के प्रति अपार सहानुभूति एवं वात्सल्य–भाव था, जो अभी अल्पायु अर्थात् मात्र तेरह वर्ष के ही थे। वे सब उनके शोक में समभागी थे। सब संतों एवं भक्तों के साथ मिलकर संत सांईं चन्दीराम साहिब ने बारहवें पर संत सांईं चाँड्रूराम साहिब जी को दरबार साहिब की गद्दी पर विराजमान करके गद्दीनशीन किया। साथ ही संत सांईं आसूदाराम साहिब जी की समाधि साहिब का निर्माण पूर्व में उनके द्वारा बतलाये गये स्थान एवं आदेशानुसार, अर्थात् ऊपर परम सद्‌गुरु संत सतरामदास साहिब, मध्य में अमर शहीद संत कँवरराम साहिब तथा अंत में सद्‌गुरुओं के पाद–पद्‌मों में, सांईं आसूदाराम साहिब जी का स्वरूप रखकर किया गया। समाधि साहिब के पास में ही संतों की पावन धूली (धूणी) रखी गयी, जो सब भक्तों के दुःख निवारण एवं सब मंगलों को प्रदान करने वाली है। बारहवें के दिन सब संतों एवं भक्तों ने संत सांईं आसूदाराम साहिब के महान् जीवन–मूल्यों को बारी–बारी से स्मरण किया। सबने एक स्वर से उन्हें एक सच्चा एवं पूर्ण संत, दरवेश, फकीर, योगी, महात्मा एवं पूर्ण गुरु–भक्त एवं गौ–भक्त निरूपित किया।

ऐसे भावनात्मक अवसर पर सांईं चाँड्रूराम साहिब जी की मनःस्थिति का वर्णन कौन कर सकता हैं? सब संतों का आशीर्वाद उनके साथ था ही। सभी संत एवं भक्तजन इस बात से पूर्ण

आश्वस्त थे, कि वे निःसंदेह अपने पूज्य पिता के गुणों एवं कार्यों के सुदृढ़ वाहक बनेंगे और उनका, उनके सद्गुरु देवों का तथा अपना नाम जग प्रसिद्ध करेंगे। समय ने अपनी गति कायम रखी, बारहवें के पश्चात्, धीरे–धीरे सब संतजन एवं भक्तजन अपने–अपने स्थानों की ओर लौटने लगे।

इस प्रकार हे मुनीश्वरों ! पन्नो आकिल में बीस वर्षों से जगमगाने वाला यह दैदीप्यमान सितारा टूटकर परम चैतन्य में विलीन हो गया। सिंध के महान् संत सतरामदास साहिब, अमर शहीद संत कँवरराम साहिब की महान कृपा एवं नामामृत से प्रज्जवलित वह ज्योति अनंत ज्योति में विलीन हो गई। जिस ज्योति ने स्वयं का कल्याण साधकर जगत के अनेकानेक जीवों को सन्मार्ग की ओर अग्रसर किया, अनेक दीन–दुःखियों के दुःख दूर किये, अनेक ईश्वर पिपासुओं को प्रभु–प्रेम प्याला पिला करके मदमस्त किया और अपने संतत्व से अपना एवं अपने सद्गुरु देवों का नाम रोशन किया। ऐसा ज्योति पुंज, परम ज्योति से एकाकार हो गया। परन्तु उस ज्योति का पृथ्वी से लोप कदापि नहीं हुआ। ज्योति–स्वरूप उस संत ने अपने आध्यात्मिक संपदा के वारिस, अपने योग्य पुत्र सांईं चाँडूराम साहब जी के पवित्र हृदय में, वही ज्योति जगाई, जो स्वयं उनके हृदय में जगमगा रही थी। अतः उनके भक्तों, सेवकों, प्रेमियों की आशाओं के बाँध टूटे नहीं, अपितु और अधिक दृढ़ आस्था से सुदृढ़ हो गये। कारण कि उनके सुपुत्र श्री संत चाँडूराम जी ने अपने पिताश्री की इच्छाओं और आदेशों का, न केवल पालन किया, वरन् उनके इष्ट कार्यों को विशालता भी प्रदान की। अपने परम पूज्य पिताश्री की अनुपस्थिति, उन्हें अवश्य ही कुछ क्षण विह्वल कर देती है, और वे मन–ही–मन कह उठते हैं–

कींअ विसारियां वर अदियूँ, मुहिंजो हाल महुरम यार हो।
हाल महुरम यार हो, मुंहिजो दिल जो महुरम यार हो।
कींअ विसारियां वर अदीयूँ, मुंहिजो हाल महुरम यार हो।

प. पू. माता साहिब जी का परलोक गमन

प. पूजनीय माता साहिब जी, अर्थात् संत सांईं आसूदाराम साहिब जी की धर्मपत्नी, श्रीमती बैंसरदेवी विनम्रता, सेवा, आतिथ्य, दया, धर्म की साक्षात् मूर्ति थीं। वे सादगी पसन्द एवं वात्सल्य की धनी थीं। अपने शिव–स्वरूप पति की सेवा एवं आज्ञा पालन ही उनका परम धर्म था। संत श्री चाँड्रूराम साहिब जी जैसे अमोलक–रत्न को जन्म देने वाली इस माता की कोख सदा–सर्वदा के लिये धन्य हो गई। उन्होंने ऐसे 'लाल' का हर प्रकार से उचित लालन–पालन करके, उन्हें सदैव अपने पू. पिता के नक्शे–कदम पर चलने की शिक्षा दी। वे अन्त तक पन्नो आकिल दरबार में सेवा करतीं रहीं। यद्यपि लखनऊ में दरबार स्थापना के पश्चात् उनके सुपुत्र श्री चाँड्रूराम साहिब जी एवं अन्य प्रेमियों ने उन्हें भारत आकर रहने का बहुत आग्रह किया, किन्तु वे अपने पतिदेव के दरबार की अंत तक सेवा करने की और वहीं देह त्यागने की इच्छा रखतीं थीं। अतः उन्होंने वहीं रहने का निश्चय किया। ईश्वर की परम–कृपा से उनकी देह उनकी इच्छानुसार ही **सहाई विस्पति** (गंगा दशहरा) 20 जून 1991 को वहीं छूटी। इस प्रकार एक पूज्य माता, अपने शिव–स्वरूप पति एवं निर्मल चंद्रमा–स्वरूप पुत्र के सुखों से सनी हुई सत्यलोक सिधारीं।

ψΨΨΨψ

अध्याय–17

घटनाक्रम

संत बाबा आसूदाराम साहिब जी

सन् 1895 सन्त बाबा आसूदाराम साहिब जी का जन्म रामनवमी को ग्राम आलमखान जतोई, तहसील पन्नो आकिल, जिला सक्खर, सिंध में हुआ।

सन् 1904 हाजीखान ग्राम, आलमखान, जतोई से १ किलोमीटर दूर स्थित समर्थ सद्गुरु सन्त सतरामदास जी से पूज्य पिताश्री के माध्यम से प्रथम भेंट हुई।

सन् 1910 गुरु के द्वार रहिड़की साहिब पहुँचे।

सन् 1921 सतगुरु देव जी की आज्ञा से सन्त कँवरराम साहिब जी से नाम–दान प्राप्त हुआ।

सन् 1930 गुरु आज्ञानुसार निजी ग्राम आलमखान, जतोई में वापसी एवं सत्संग स्थल की स्थापना।

सन् 1934 शुभ विवाह माता बैंसरदेवी से सम्पन्न।

सन् 1937 प्रथम कन्या बहिन प्रीतीदेवी का जन्म हुआ।

सन् 1939 पन्नो आकिल में चरण घुमाते हुए, सद्गुरु पूज्य सन्त कँवरराम साहिब जी का आदेश, कि ग्राम छोड़कर पन्नो आकिल शहर में सत्संग स्थान का निर्माण कराएँ।

सन् 1940 पन्ने आकिल में सद्गुरु के पूर्व आदेश अनुसार दरबार साहिब का निर्माण प्रारम्भ।

सन् 1842 निर्मित दरबार साहिब का उद्घाटन।

सन् 1947 पुत्र–रत्न प्राप्ति (हाजिर सतगुरु सन्त चाँडूराम साहिब जी)

सन् 1952 द्वितीय कन्या बहिन कौशल्यादेवी का जन्म हुआ।

सन् 1956 के अक्टूबर माह में सत्संग, रटन करते भारतवर्ष में 11 माह का वास किया।

सन् 1959 अक्टूबर माह में सेवकों के कार्य सम्पन्न कराने हेतु पुनः भारत यात्रा।

सन् 1960 दिनांक 4 मई को सिन्ध वापसी।

सन् 1960 दिनांक 4 सितम्बर को महा निर्वाण।

ψΨΨΨψ

अध्याय–18

संत सांई चाँड्ूराम साहिब जी 'संक्षिप्त जीवन–परिचय'

संत सांई चाँड्ूराम साहिब जी का संक्षेप में जीवन–परिचय देना, मानो गागर में सागर भरना ही है। हे मुनीश्वरों ! इस प्रयास में आप सज्जनों की कृपा ही मुझ अकिंचन का सामर्थ्य है। संत सांई आसूदाराम साहिब जी को ईश्वर ने तीन संतानें प्रदान कीं, दो पुत्रियाँ और एक पुत्र संत चाँड्ूराम साहिब। संत सांई चाँड्ूराम साहिबजी का जन्म 6 सितम्बर 1947 को पन्नो आकिल, जिला सक्खर में हुआ। 6 सितम्बर 1947 को जन्माष्टमी अर्थात् सोलह कला संपन्न भगवान् श्रीकृष्ण का पावन प्राकट्य दिवस था। अतः श्रीकृष्ण जन्माष्टमी की रात्रि इस पुण्य दम्पत्ति, अर्थात् आसूदाराम साहिब एवं उनकी धर्मपत्नी, द्वारा समस्त जगत को गीता का परम पावन शाश्वत् एवं सनातन संदेश देने वाले गोपाल कृष्ण के स्मरण भजन में गुजरी। अगले ही दिन गोपाल ने अपनी अहेतु कृपा–प्रसादी के रूप में इस निर्मल दम्पत्ति को एक ऐसा पुत्र–रत्न प्रदान किया, जो पूर्णिमा के पावन चाँद की भाँति आज क्षितिज में चमक रहा है। इसे गोपाल कृष्ण और श्री सद्गुरु का, एक गौ–भक्त सांई आसूदाराम साहिब जी को, अनुपम उपहार भी कह सकते हैं।

सांई चाँड्ूराम साहिब जी का जन्म एक पूर्ण संत के घर हुआ। अतः स्वभावतः उन्हें बाल्यावस्था से ही संतत्व की शिक्षा एवं वातावरण प्राप्त हुआ। इस बालक रूपी पौधे की संतत्व रूपी वट वृक्ष में परिणित करने का श्रेय मुख्यतः पूज्य माता बैंसरदेवी और पू. पिता श्री आसूदाराम साहिब जी को ही है। स्नेहमयी माता ने अपने लाड़ले सुपुत्र के कोमल एवं निर्मल कोरे हृदय पटल पर सुसंस्कारों की ऐसी छाप अंकित की, कि वे संस्कार

आज उनके संतत्व के स्तम्भ साबित हो रहे हैं। उन सुसंस्कारों को फलीभूत करने में उनके पूज्य पिताश्री का सशक्त हाथ रहा। ऐसा स्वयं संत श्री चाँड्रूराम साहिब जी का मानना है। उनके साथ ही संत साँईं चाँड्रूराम साहिब जी को जिन सत्पुरूषों एवं संतजनों का सतत् सान्निध्य, अक्षुण्ण एवं अमिट शिक्षा का लाभ प्राप्त हुआ, उनमें प्रमुख हैं – सर्वश्री संत सांईं बहरूराम साहिब जी, संत साँईं केवलराम साहिब जी, सांईं भगवान दास साहिब जी, सांईं जागणराम साहिब जी, सांईं चेतनराम साहिब जी एवं फकीर सांईं रहीम बक्श साहिब जी (सभी सिंध स्थित) संत सांईं शांति प्रकाश जी महाराज (उल्हासनगर), संत साईं गोपाराम (वसण घोट दरबार), संत भाई पेसूराम (अमरावती), संत बाबा हरदासराम (जलगांव) भारत स्थित।

संत सांईं चाँड्रूराम साहिब जी का बाल्यकाल अपने पूज्य पिताश्री की भाँति ही उस परम सत्य एवं शाश्वत् सत्ता की तीव्रतम जिज्ञासा में व्यतीत हुआ। पूर्व में जैसा कि हम जान चुके हैं, संत सांईं आसूदाराम साहिब जी के सत्यलोक सिधारने के पश्चात् तेरह वर्ष की अल्प आयु में ही उन्हें गुरु गद्दी संभालनी पड़ी थी। अतः उन्होंने बहुत छोटी आयु में ही गायन–वादन तथा धार्मिक शिक्षा का गहन अध्ययन करना आरम्भ किया था। उन्होंने अपने पूज्य पिता श्री आसूदाराम साहिब जी एवं संत सांईं केवलराम साहिब जी से न केवल गायन–वादन एवं धार्मिक शिक्षा ही प्राप्त की, अपितु उन्होंने उनमें महारत भी हासिल कर ली। आरंभ से ही वेदांत में रूचि रखने वाले संत सांईं चाँड्रूराम साहिब जी ने किशारोवस्था में गुरुवाणी, श्रीमद्भागवद्, गीता, रामचरितमानस आदि–आदि ग्रंथों का गहन अध्ययन, मनन एवं चिंतन किया। साथ–ही–साथ उन्होंने नाना तर्क संगत जिज्ञासुओं का गुरुजन सम वरिष्ठ संत–ज्ञानियों से समाधान भी पाया। उन जिज्ञासुओं के समाधान के साथ ही, वे इस निश्चय पर पहुँचे,

कि एक सच्चे ईश्वर जिज्ञासु के लिये, एक मात्र गुरुकृपा ही सर्वोपरि साधन है, शेष सभी साधन गौण है।

'गुरु बिनु भवनिध तरहि न कोई,
जो विरंचि शंकर सम होई।'

पूर्ण गुरुकृपा संपूर्ण आत्मसमर्पण के बिना असंभव है। इस प्रकार ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र उपाय सद्गुरु एवं ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण ही है। संत सांईं चाँडूराम साहिब जी ने ऐसा निश्चय पूर्वक जानकर ईश्वर के प्रति अपना पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया। अर्थात् उन्होंने अपना अहमत्व का दावा त्यागकर अपने सद्गुरु एवं ईश्वर को आममुख्त्यारी दे दी। श्री दादू साहिब जी ने भी इसी भाव का समर्थन करते हुए कहा है–

'दादू दावा दूर कर, बिन दावे दिन काट।
केते सौदा कर गये, इस पासारी के घाट।।'

अगम (अगम्य) के प्यासे संत सांईं चाँडूराम साहिब जी अब गुरुकृपा प्राप्ति के लिये सतत् प्रयत्नशील रहने लगे, यह समय उनके तीव्र वैराग्य का था। दाढ़ी बढ़ी हुई, माथा ढ़ँका हुआ, सिर झुका हुआ। शेष उनके अंतर मन का हाल तो उनकी आँखें ही प्रकट करतीं थीं, जो किसी की गहन प्रतीक्षा में आतुर थीं। उन आँखों का हाल तो वही पढ़ सकता है, जिसे ऐसी लगन लगी हो। लगन लगाना कोई साधारण चर्चा तो नहीं, यह तो स्वयं को फना करने के समान है।

'सिक नाहे सुथिरी, खण पड़्ड़े पेरु।
कुसण धारा केरु, करे सध सिकण जी।।'

वैराग्य की ऐसी अवस्था में उन्होंने अपने मन से इन दो बातों को पूर्णतया त्याग दिया, कि मुझे क्या बनना है, और मुझे क्या चाहिए ? कारण कि–

'किआ मागउं किछु थिरु न रहाई'

उनकी ऐसी पक्की धारणा थी, कि उनकी अपेक्षा सर्वेश्वर प्रभु उनसे बहुत अच्छी तरह इस बात को जानते–समझते हैं, कि उसे उन्हें क्या बनाना हैं और क्या देना है?

गीता में भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि मुझे **तत्व** भाव से प्राप्त करने वाला पुरुष, न तो किसी वस्तु के लिये शोक करता है, न ही किसी वस्तु की आकांक्षा। ऐसा भक्त ही मेरी परम भक्ति को प्राप्त होता है –

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभत पराम्।। (१८/५४)

श्री कबीर साहिब जी ने भी वैराग्य की ऐसी अंतिम अवस्था का वर्णन करते हुए कुछ ऐसा ही कहा है–

'जगत का नहीं भोग माँगे, स्वर्ग का वासा नहीं।
फिकर जीने की नहीं जिसको, मरण का संसा नहीं।।
मुक्ति को चाहे न जो, ईश्वर दर्शन प्यासा नहीं।
'कबीर' वैरागी वही, जिसको कुछ भी आशा नहीं।।

उपरोक्त पद में श्री कबीर साहिब जी ने उन परम वैरागियों की उस अवस्था का वर्णन किया है, जहाँ वे अपने नित्यमुक्त स्व–स्वरूप में ईश्वर को अभिन्न से एकाकार निहारा करते हैं। अस्तु, वे अब पूरी–पूरी रात अपने घर अर्थात् दरबार में ईश्वर–दर्शन की प्यास में बैठकर गुजार देते थे और प्रातः काल से ही सायं पर्यन्त, श्मशान भूमि में बैठकर, स्वयं को जगत की अनित्यता और आत्मा की शाश्वत्तता का पाठ पढ़ाते रहते थे। ऐसे में उन्हें अब मात्र अपने प्रियतम के, अपने साहिब के सिवाय कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। वे अपने अंतःकरण में, अपनी आत्मा में ही इस समस्त सृष्टि के सृजनहार का दीदार कर रहे थे–

फकीरा नूँ साहिब लगंदा प्यारा,
फकीरा नूँ साहिब लगन्दा प्यारा।
घट ही में गंगा, घट ही में जमुना,
घट ही में ठाकुर द्वारा।
घट ही में सूरज, घट ही में चन्द्रमा,
घट ही में नवलख तारा।
रोम–रोम में सतगुरु बिराजे,
जिउ हड्डोअ बिच पारा।
कहे 'कलन्दर' तन–मन अन्दर
धढ़लधा घर सारा।

गुरु–कृपा एवं भगवत्–कृपा ऐसे दृढ़ निश्चय वालों से भला कब दूर रह सकती है ? सदा दयाल सद्गुरुदेवों को और ईश्वर को अपने ऐसे परम भक्तों पर कृपा–दृष्टि करनी ही पड़ती है, जिसका परिणाम आज हम सबके समक्ष संत श्री चाँड्रूराम के रूप में विद्यमान है।

इस बीच उन्होंने अपने गुरुजनों की भाँति गृहस्थ धर्म में प्रवेश किया। तब उन्होंने निर्णय लिया, कि वे पन्नो आकिल स्थित अपनी भूमि पर तीन दुकानें बनवाकर, दो दुकानें किराये पर देंगे, और एक में स्वयं का व्यवसाय आरम्भ करेंगे। जब वे अपने इस निर्णय को मूर्तरूप देने ही वाले थे, तभी भाई राधामल जी ने, जो संत सांईं आसूदाराम साहिब जी के निकट शिष्यों, रिश्तेदारों में से एक थे, और बुजुर्ग समान थे, उन्हें विनयपूर्वक स्मरण करवाया, कि हे सांईं ! आपके पूज्य पिताश्री ने अपने समर्थ सद्गुरुओं से नाम–रूपी अमृत पीकर, उस नाम की पावन बेल लगाई है, उसे आपको सींचकर पुष्पित–पल्लवित करना है। उन्होंने दरबार एवं दरबार में डेवरी (समाधि) साहिब की स्थापना भी की है, जहाँ नित–नियम से भक्तजनों एवं मेहमानों का आगमन होता रहता है। अतः उन्हें ईश्वरीय ज्ञानामृत का पान करवाना

एवं उनकी सेवा करना भी आवश्यक है। साथ ही सभी संतों ने आपको अपने पूज्य पिताश्री की गद्दी पर विराजमान किया है। अतः आपसे हमारा यही निवेदन है, कि आप व्यवसाय के अपने निर्णय को त्यागकर अपने पूज्य पिताश्री की दरबार साहिब की सतत् सेवा करें और अपने सद्‌गुरुओं और पिताश्री आसूदाराम साहिब जी के कार्यों को जन–जन तक पहुँचायें। संत सांईं चाँड्रूराम साहिब जी ने उनकी बातों पर बहुत गंभीरतापूर्वक विचार किया और उनके द्वारा सुझायी गयी बातों को, अधिक युक्ति संगत एवं सार सम्पन्न जानकर, अंततः व्यवसाय का अपना विचार त्याग दिया और स्वयं को पूर्णतः अपने पूज्य पिताश्री की दरबार की सेवा–सुश्रुषा में समर्पित कर दिया।

इस प्रकार संत साईं चाँड्रूराम साहिब जी के पूर्वार्ध जीवन दर्शन का संक्षेप में वर्णन करने के उपरान्त अब हम उनके वर्तमान स्वरूप की कुछ झलक प्रस्तुत करते हैं। संत सांईं चाँड्रूराम साहिब जी सन् 1976 में भारत आये और भारत स्थित अपने प्रेमियों के अत्यंत आग्रह पर उन्होंने लखनऊ में शिव–शान्ति आश्रम के निर्माण की योजना बनाई। जिसका शिलान्यास 9 जून 1977 आषाढ़ संक्राति बुधवार को हुआ। इस आश्रम की नींव की पहली ईंट श्री समाधा आश्रम के स्वामी शिवभजन जी महाराज के द्वारा सितम्बर 1978 को रखी गई। सन् 1979 में आश्रम बनकर तैयार हुआ। संत बाबा आसूदाराम साहिबजी के वर्सी महोत्सव (03–09–1979) से आश्रम के प्रांगण में कार्यक्रमों का शुभारम्भ हुआ। जैसा कि संत कँवरराम साहिब जी ने बाबा आसूदाराम साहिब जी को **शिव** की उपाधि से अलंकृत किया था। अतः इसी धारणा को ध्यान में रखते हुए, आश्रम का नाम **"शिव शांति आश्रम"** रखा गया। जिसके माध्यम से संत सांईं चाँड्रूराम साहिब जी आज अनेक पारमार्थिक कार्यों का संचालन कर रहे हैं।

सिंध के शिरोमणि संत सतरामदास साहिब जी एवं अमर शहीद भगत कँवरराम साहिब जी में अटूट श्रद्धा–भक्ति रखने वाले संत सांईं चाँड्रूराम साहिब जी को ईश्वर ने मधुर कंठ प्रदान किया है। उनकी कर्ण–प्रिय वाणी में अलौकिक शक्ति है, जो सब सुनने वालों में अनायास ही ईश्वर के प्रति अनुराग उत्पन्न कर देती है। उनके गायन में सुरों का अनूठा उतार–चढ़ाव है। उनके भजन सत्संग में हजारों नर–नारी अपनी सुध–बुध खोकर घंटों मंत्रमुग्ध हो बैठे रहते हैं। उनके भजनों में गुरुवाणी के साथ–साथ, अनेक सूफी संतों, फकीरों, दरवेशों के कलामों की प्रधानता रहती हैं, जो आज भी सिंध की पावन भूमि का अहसास कराती हैं।

सदा आत्मानन्द में निमग्न रहने वाले इस संत के रोम–रोम में गरीबों, अनाथों, असहायों, अपंगों के प्रति अपार करुणा का समुद्र भरा हुआ है। वे आज अपनी पूरी शक्ति से उनके दुःख–दर्दों के निवारण में यत्नशील है। यही कारण है, कि वे अपने शिव शांति आश्रम के माध्यम से परमार्थ के कार्यों का संचालन कर रहे हैं, जो आज जन–कल्याण का प्रतीक है। इन्हीं दीन–दुखियों के दुःख निवारण हेतु ही उन्होंने, न केवल लखनऊ, अपितु भारत के अनेक नगरों में, ऐसी संस्थाओं की स्थापना की है, जो उनके आश्रम के तत्वाधान में नगर–नगर में, गाँव–गाँव में जन सेवा के कार्यों का सम्पादन कर रहीं हैं। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं, कि उन्होंने एक प्रकार से अपना जीवन ही परहित के लिए समर्पित कर दिया है। वे अपने सुख–दुःख का विचार न करते हुए, कई दिनों तक भ्रमण करते रहते हैं। श्री तुलसीदास जी महाराज ने सच ही कहा है–

'संत सहहिं दुःख परहित लागी।'

वे शहर–शहर, गाँव–गाँव जाकर, अपने सत्संग के माध्यम से, जन–मानस को इस दैव–दुर्लभ मानुष देही को, ईश्वर–भजन द्वारा सफल करने का संदेश देते हैं।

''जो न तरे भवसागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंद मति, आत्महन गति पाइ।''

साथ ही वे समाज में फैली बुराईयों और कुरीतियों, गलत परम्पराओं का कड़े शब्दों में विरोध करते हैं। वे गिरते सामाजिक एवं मानवीय मूल्यो पर अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। धर्म के नाम पर पाखण्ड के कट्टर विरोधी इस संत की वैचारिक चेतना का प्रखर रूप, उस समय खुलकर सामने आ जाता है, जब वे अपने कथा–प्रसंगो में उनपर कड़ा प्रहार करते हैं। उस समय ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे अपने दोनों हाथों में नंगी तलवार लिये, इन बुराइयों का मान–मर्दन करने को, निडर शेर की भाँति दहाड़ते हों।

प्राचीन हिन्दु–सिन्धी संस्कृति और आध्यामिक मान्यताओं के प्रति अपार आदर रखने वाले संत साँई चाँड्रूराम साहिब जी का पल–पल इन्हें पुनर्जीवित करने एवं समृद्ध करने में व्यतीत हो रहा है। एकता भाईचारे और शांति में पूर्ण निष्ठा रखने वाले इस संत के विचारों में हर मसले में पारदर्शिता, दृढता, अडिगता साफगोई और स्पष्टता झलकती है।

संतों–फकीरों–दरवेशों के प्रति अपार प्यार एवं श्रद्धा रखने वाले संत के दिल में भारत एवं सिन्ध के सभी सच्चे संतों के प्रति अगाध आदर भाव है। विनम्रता की प्रतिमूर्ति ये संत जहाँ–जहाँ जाते हैं, वहाँ स्यवं संतों के दर्शनों हेतु जाते और उनसे चर्चा लाभ प्राप्त करते हैं। वे उन विद्वान संतों का एक–एक शब्द बड़ी तत्परता से ग्रहण करते हैं। वे न केवल श्रवण करते हैं, किंतु समायोचित उस पर उचित अनुचित टीका करने से भी पीछे नहीं रहते हैं। वे अपार इच्छाशक्ति एवं निडरता के धनी हैं। सदा अध्ययनशील संत साँई चाँड्रूराम साहिब जी इस मायने में पूर्ण आशावादी हैं, कि समय फिर बदलेगा और सूफियों, संतों, फकीरों की वाणी पुनः घर–घर में गूँजेगी। सदा हँसमुख,

सरलचित एवं गंभीरता की इस सौम्य मूर्ति में गुण ग्राहिता दृष्टिगत होती है। सदगुरु एक और गुरु अनेक, की धारणा में पूर्ण आस्था रखने वाले संत साँई चाँड्रूराम साहिब जी, उदारता के उदात्त शिखरों पर खड़े होकर, अपने सब अनुयायियों को मुक्तकंठ कहते हैं, कि उन्हें जहाँ–जहाँ से भी सदगुण मिलें, उन्हें अवश्य ग्रहण करें। साथ ही जिस दरबार में, स्थान पर, उनकी पूर्ण निष्ठा हो, उसे गुरु दरबार के समान जानकर, अपनी सेवा सत्कार प्रदान करें।

सदा सत्य की खोज पर बल देने वाले ये संत अपनी बुद्धि को तराशने एवं विशाल बनाने के हिमायती हैं। अहं से सदैव सतर्क और लक्ष्य स्वरूप में निरंतर दृष्टि रखने वाले संत साँई चाँड्रूराम साहिब जी की वाणी जन मानस को सत्य की खोज के लिये ईश्वर भक्ति के लिये उत्साहित एवं आंदोलित करती है। अपार गुणों के सागर ये संत गुणों के मध्य श्री सदगुरु कृपा से स्वयं को गुणातीत अवस्था में साधे हुए हैं। वे आज कोटि–कोटि जनता की आध्यात्मिक चेतना के प्रेरणा स्रोत बने हुए हैं। किसी शायर ने बड़ा सुन्दर कहा है–

हजारों साल नरगिस, अपनी बेनूरी पर रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है, चमन में दीदावर पैदा।।

सिन्ध के शिरोमणि संत सांई सतरामदास साहिब, अमर शहीद भगत कँवरराम साहिब और संत बाबा आसूदाराम साहिब के पदचिन्हों का अनुसरण करने वाले तथा उनके पावन कार्यों का क्रियान्वयन करने वाले संत सांई चाँड्रूराम साहिब के गुणों का यथासम्भव बखान करने में मुझ जैसे अल्प बुद्धि और अकिंचन की लेखनी में कमी रहना स्वाभाविक है। अतः मैं आप सब ऋषीश्वरों एवं मुनीश्वरों से क्षमाप्रार्थी हूँ। उनकी स्तुति में मैं इससे अधिक क्या कहूँ–

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाए,
धन्य सो नगर जहाँ ते आए।
धन्य सो देसु–सेलु–वन–गाँव,
जहँ–जहँ जाहिं धन्य सोई ठाउँ।।

अंततः मेरा यही नम्र निवेदन है, कि हम सब मिलकर उस जगन्नियन्ता जगदीश्वर से यही प्रार्थना करें, कि वे संत सांईं चाँड्रूराम साहिब को दीर्घायु और उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करें, जिससे अनेकानेक भ्रान्त धारणाओं, मान्यताओं और आस्थाओं में भटकता हुआ यह मानव समाज, सच्चे धार्मिक मूल्यों को जानकर, उनको ग्रहण करे और दुःसह दुर्दशा को प्राप्त यह जीव, यथार्थ को जानकर, असत्य से सत्य, अंधकार से आलोक, मृत्यु से अमरत्व को प्राप्त कर सके। हमारी हिन्दू संस्कृति का मूल–मंत्र भी यही है–

असतोमा सद्‌गमय,

तमसोमा ज्योतिर्गमय,

मृत्योर्मा अमृतगमय।'

अर्थात्– सभी प्राणी सुखी हों, निरोगी हों, सबका कल्याण हो और कोई भी दुःख का भागी न हो।

ओम शांतिः। शांतिः।। शांतिः।।।

नारायण। नारायण।। नारायण।।।

ψΨΨΨψ

समापन – बुधवार 6 अगस्त 1997, समय प्रातः 8–12 बजे,

श्रावण शुक्ल, फाल्गुन संवत 2054,

अध्याय–19

संत बाबा आसूदाराम साहिब जन्म–शताब्दी समारोह

पूज्य शिव शांति आश्रम लखनऊ के प्रांगण में 1979 से ही प्रतिवर्ष संत बाबा आसूदाराम साहिब जी का बरसी महोत्सव बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है, जिसमें सम्पूर्ण भारतवर्ष से ही नहीं, अपितु सिंध के कोने–कोने से, श्रद्धालुओं के जत्थे कार्यक्रम में सम्मिलित होकर, अपने जीवन की धन्यता का अनुभव करते हैं तथा उत्सव में भारत एवं सिंध से अनेक विद्वान, धर्मावलंबी, संत तथा गायक कलाकार यहाँ पधारकर, कार्यक्रम को सुशोभित करते हैं। बरसी महोत्सव में संतों के सत्संग एवं प्रवचन तथा गायक कलाकारों के भजन–कीर्तन चारो दिन अनवरत रूप से चलते रहते हैं। जिसका श्रवण कर उपस्थित विशाल संख्या में पधारे श्रद्धालु एवं भक्तगण मंत्रमुग्ध हो जाते हैं।

सन् 1995 में इस महोत्सव की श्रंखला में एक नया मोड़ देते हुए, संत बाबा आसूदाराम जी के जन्म के सौ वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में, लखनऊ में ही नहीं, अपितु सारे भारतवर्ष तथा सिंध के एक सौ एक नगरों में, संत बाबा आसूदाराम की **जन्म–शताब्दी** के रूप में एक भव्य एवं आदर्श समारोह के आयोजन का संकल्प लिया गया। यह कार्यक्रम (जन्म–शताब्दी समारोह) विशालता तथा बहुउद्देश्यों को समेटे हुए, समाज में व्याप्त कुरीतियों, स्वार्थ–परायणता, संकीर्णता एवं अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करने के लिए, सूर्य रूपी प्रकाश के अविर्भाव हेतु, सत्संग रूपी दीप प्रज्वलित किया गया। संतों के कथनानुसार–

सेवा परमात्मा प्राप्ति का एक साधन है।

संत कँवरराम साहिब जी ने जैसा कि सेवा को ईश्वर प्राप्ति का माध्यम बताते हुए यह संदेश दिया, कि हम परमार्थ कार्यो में संलग्न होकर, अपने क्षुद्र अहंकार को त्यागकर, अपने जीवन को जनहित तथा लोक कल्याण के कार्यो में समर्पित करें, जिससे कि जीवन में शाश्वत प्रेम–शांति का आविर्भाव हो सके। ऐसा शास्त्रों में भी उल्लेख है–

परहित सरिस धरम नहिं भाई।

(रामायण)

ऐसे ही महान उद्देश्य को मूर्तरूप देते हुए तथा परमार्थ कार्यों के वृहत कार्यक्रमों में निहित जीव–कल्याण के हेतु बीज बोते हुए, संत शिरोमणी चाँडूराम साहिब जी ने पचास नगरों में समितियाँ गठित करवाईं। समितियों के कार्यों में वे अपने–अपने नगरों में ही पौशाला (जलाश्रम) का निर्माण कराएँ। जरूरत–मंदों को रोटी, कपड़ा, गरीब अबलाओं एवं कन्याओं के उत्थान में सेवा, आपातकालीन बीमारी, आपात, दुर्घटना एवं मृत्यु पर स्थिति देखकर आवश्यक सेवा करना आदि–आदि।

पाँच सदस्यों (पंज प्यारों) की इस समिति का नाम पूज्य **संत बाबा आसूदाराम सेवा समिति** रखा गया। समिति में अपना नाम दर्ज कराने के पूर्व कुछ पाबंदी तथा कुछ नियमों का पालन करना अनिवार्य किया गया। हर नगर में प्राथमिक पाँच सदस्यों (पंज प्यारों) को मनोनीत किया गया, जो पूर्णरूप से शाकाहारी हों, जुआ, मांस, मदिरा, हिंसा, चोरी, नार (परस्त्री), परहेजगारी आदि 7 नियमों का पालन अवश्य करेंगे। इन समितियों को शताब्दी समारोह के अवसर पर अनुदान दिया गया तथा भविष्य में संत जी का जब भी उस नगर में आगमन होगा, तो संतों को चढ़ाई गई भेंट–राशि आदि को नगर की उस

समिति को ही सौंप दिया जानें का दृढ़ विचार किया गया, जिससे समिति नगर में ही सेवा के क्षेत्र में कुछ कार्य कर सके।

जैसा पूर्वविदित है, कि संत श्री द्वारा समितियों का गठन 50 नगरों में किया गया। वे नगर क्रमशः निम्न हैं–

1. रायबरेली
2. इटारसी
3. सीधी
4. सतना
5. रायपुर
6. अमरावती
7. राजनंदगांव
8. डबरा
9. मोठ
10. दिल्ली
11. चिरगांव
12. नागपुर
13. दुर्ग
14. दतिया
15. फैजाबाद
16. वाराणसी
17. कानपुर
18. कटिहार
19. एल.डी.ए.,लखनऊ
20. रीवा
21. भिलाई
22. गोण्डा
23. इन्दौर
24. धमतरी
25. बिलासपुर
26. भाटापारा
27. प्रतापगढ़
28. दरभंगा
29. यवतमाल
30. समथर
31. कल्याण
32. होशंगाबाद
33. कोलकाता
34. पालीताणा
35. पाकोड़
36. जलगांव
37. उरई
38. बहराइच
39. झांसी
40. बस्ती
41. मवैया, लखनऊ
42. टिल्डा
43. देवास
44. रायगढ़
45. पावर हाउस
46. पन्नो आकिल (सिंध)
47. घोटकी (सिंध)
48. खानपुर (सिंघ)
49. करमपुर (सिंध)
50. कंधकोट (सिंध)

जन्म शताब्दी समारोह का आरम्भः

सदी पूर्व अविभाजित भारत के सिंध प्रान्त में जन्में संत बाबा आसूदाराम साहिब जी का जन्म शताब्दी समारोह सर्वप्रथम शिव शांति आश्रम, लखनऊ में 6 अप्रैल 1995, रामनवमी को परम श्रद्धाभक्ति एवं संपूर्ण भव्यता के साथ प्रारम्भ हुआ। इस अवसर पर देश–विदेश से पधारे हजारों लोगों, जिनमें दरवेश, महात्मा, संत–सूफी, ज्ञानी एवं मुनियों ने उन्हें अपने श्रद्धा–सुमन अर्पित किए।

समारोह के शुभारम्भ में प्रातः 10 बजे युग निर्माण योजना शांतिकुंज हरिद्वार में लखनऊ इकाई के प्रभारी श्री एस. के. त्रिवेदी एवं सहयोगियों द्वारा यज्ञ सम्पन्न कराया गया। श्री त्रिवेदी जी ने भारतीय संस्कृति में यज्ञ के महत्व को रेखांकित करते हुए बताया, कि वातावरण की शुद्धि ही नहीं, बल्कि हमारे स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर के सभी विकारों को भी, यज्ञ एवं मंत्रोच्चारण द्वारा ठीक किया जा सकता है। यज्ञ के पश्चात आश्रम में, हिन्दू नववर्ष पर, प्रथम पक्ष में, पारस्परिक रूप से ध्वजारोहण का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। हिन्दू संस्कृति के प्रतीक ध्वज को स्वयं सेवकों ने प्रणाम किया। लोगों ने हर्षित होकर बाबा जी के नाम का जय–घोष किया तथा बच्चों ने रंग–बिरंगे गुब्बारों को उड़ाकर आकाश भर दिया। 100 कबूतर उड़ाकर कार्यक्रम का शुभारम्भ प्रतीकात्मक रूप से किया गया एवं नवनिर्मित संत बाबा आसूदाराम जी की भव्य मूर्ति का अनावरण संत श्री चाँड्रूराम साहिब के कर–कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

संत शिरोमणि चाँड्रूराम साहिब जी ने पताका फहराकर और शांति के प्रतीक 100 कबूरतों को उड़ाकर, इस पाँच दिवसीय कार्यक्रम का शुभारम्भ किया एवं आश्रम के प्रांगण में, दतिया (म. प्र.) के श्रद्धालु शिल्पी कलाकार द्वारा तराशी गई, संत बाबा आसूदाराम जी की भव्य मूर्ति का अनावरण, संत श्री चाँड्रूराम साहिब के कर–कमलों द्वारा संपन्न हुआ।

तत्पश्चात् अहमदाबाद की प्रसिद्ध दंत–वैद्य श्रीमती सरोज एस जोशी, बी. ए. एम. एस. द्वारा लगाये गये निःशुल्क दंत चिकित्सा शिविर का उद्‌घाटन संत श्री चाँड्रूराम साहिब जी ने किया। शिविर का लाभ सभी श्रद्धालु, भक्तजनों तथा आश्रम के लोगों ने ही नहीं, अपितु, सारे नगर ने लिया और संतो की मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

समारोह के मौके पर एक लाख वर्गफुट का एक विशेष मंदिरनुमा शामियाना लगाया गया, जिसमें लंगर, शब्द, कीर्तन, भाषण और वार्तालाप के लिए अलग–अलग कक्ष बनाए गए थे। समारोह में अमर शहीद संत कँवरराम साहिब की धर्मपत्नी माता गंगादेवी जी भी पधारी थी। इस अवसर पर गुरु का लंगर, अखंड भण्डारा अनवरत रूप से चलता रहा और पांचों रात्रि ही अनवरत रूप से सत्संग–भजन–प्रवचन का कार्यक्रम सुचारू रूप से चलता रहा। पण्डाल में जहाँ इस युग के आदर्श पुरुष सन्त बाबा आसूदाराम जी की जयन्ती पर गुणगान गाये जा रहे थे, वहीं रामनवमी के पर्व को भी मध्याह्न (दोपहर) में मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम जी के जयन्ती उत्सव की भव्य छटा देखते ही बन रही थी। इसे दर्शाते हुए दिल्ली से पधारे गुरुवाणी के विख्यात विद्वान दादा लक्ष्मणदास चेलाराम ने अपने सहयोगियों के साथ मंगल गीत गाकर सम्पूर्ण वातावरण को राममय कर दिया और लक्ष्मणपुरी (लखनऊ) को धन्य किया। रात्रि के कार्यक्रम में श्रीकृष्ण–लीला के मनमोहक दृश्य लखनऊ के बाल कलाकारों ने प्रस्तुत करके मनमुग्ध किया। श्रोताओं ने इन बाल कलाकारों एवं प्रस्तुतकर्ताओं की भूरि–भूरि प्रशंसा की तथा इसी मंच पर गुरुग्रंथ साहिब की अखण्ड वाणी का पाठ चलता रहा। गुरुवाणी के विभिन्न गायक जत्थों ने अपने मधुर कंठ से गुरुवाणी के रस की वर्षा करके, संगत को सराबोर कर दिया। इस भव्य समारोह में देश–विदेश से सब मिलाकर 100 संतों, दरवेशों, सूफी फकीरों, ज्ञानियों, महापुरूषों, विद्वानों तथा गुणियों (गायकों) का सान्निध्य पाकर लखनऊ की पावन धरती पुलकित हो गई और फिर अंत में दिनांक 10.04.95 को प्रातः ही पल्लव द्वारा समारोह सम्पन्न हुआ।

उक्त जन्म शताब्दी समारोह की सफलता के पश्चात्, परम पूज्य सन्त श्री चाँडूराम साहिब ने, अन्य 100 स्थानों पर शताब्दी

उत्सव मनाने हेतु यात्रा प्रारम्भ की। जिन स्थानों पर भारत तथा सिंध में शताब्दी समारोह हुए, तिथि, स्थान, नगर एवं जिनके संयोजन में कार्यक्रम हुआ, उनकी सम्पूर्ण जानकारी निम्न रूप से हैं–

1. शिव शान्ति आश्रम लखनऊ(उ.प्र.) 06/04/95	स्थान शिव शान्ति आश्रम	संयोजक भाई किशनलाल
2. अमरावती, महाराष्ट्र, 16/04/95	मेला प्रांगण, पूज्य डेवरी साहिब	भाई सतरामदास
3. यवतमाल, महाराष्ट्र, 17/04/95	संत कँवरराम धर्मशाला वैद्यनगर	भाई खुशालदास
4. नागपुर, महाराष्ट्र 17/04/95	संत सतरामदास धर्मशाला	भाई गुरुमुखदास माखीजा
5. इटारसी, म.प्र., 18/04/95	सिन्धी धर्मशाला	भाई सेवकराम
6. होशंगाबाद, म.प्र., 18/04/95	सार्वजनिक स्थान ग्वाल टोली	भाई मोहनदास
7. इन्दौर, म.प्र., 19/04/95	सिन्धी धर्मशाला	भाई अमरलाल
8. देवास, म.प्र., 20/04/95	धर्मशाला	भाई परमानन्द
9. भोपाल, म.प्र., 20/04/95	अटलराम धर्मशाला	भाई खेमचन्द्र
10. पाकोड़, बिहार, 25/04/95	सांई गोबिन्दराम दरबार	भाई मोहललाल सोवलानी
11. कलकत्ता, प. बंगाल, 25/04/95	संत कँवरराम धर्मशाला	भाई लक्ष्मणदास
12. आकड़ा, प. बंगाल, 03/05/95	निवास स्थान	भाई ठाकुरदास
13. कचलापारा, प. बंगाल 03/05/95	निवास स्थान	भाई परसराम

14. धनबाद, प. बंगाल, 03/05/95	निवास स्थान	भाई हरीशलाल
15. लखनऊ एल.डी.ए, उप्र., 08/05/95	सार्वजनिक पाक	भाई दरशनलाल
16. राजनन्दगांव, मप्र., 16/05/95	पूज्य झन्डोसाहिब संत सतरामदास स्थान	भाई सुदामचन्द्र
17. दुर्ग, मप्र, 16/05/95	पूज्य शदाणी दरबार	भाई सीरुमल
18. पावर हाउस, मप्र., 17/05/95	निवास स्थान	भाई गोपालदास
19. मिलाई मप्र, 17/05/95	धर्मशाला	भाई अठूमल
20. राजिम, मप्र, 18/05/95	धर्मशाला	भाई गुरुमुखदास
21 रायपुर, मप्र, 18/05/95	सिन्धु भवन	भाई रमेश चन्द्र
22. भाटापारा, म.प्र., 19/05/95	सन्त हरदासराम स्थान	भाई मोहनसिंह
23. बिलासपुर, मप्र, 19/05/95	सन्त दरबार	भाई कल्याणदास
24. शहडोल, मप्र, 19/05/95	एकता चैरिटेबल ट्रस्ट धर्मशाला	भाई घनश्यामदास
25. कटनी, म.प्र., 22/05/95	स्वामी शान्ति प्रकाश आश्रम	भाई रमेशलाल
26. मैहर, म.प्र., 22/05/95	गुरुद्वारा घंटाघर	भाई बीजलदास
27. सतना, म.प्र., 22/05/95	सन्त छांगाराम दरबार	भाई किशोरलाल
28. रीवां, म.प्र., 23/05/95	धर्मशाला	भाई रमेशलाल

29. सींधी, म.प्र., 23/05/95	सिन्धी गुरुद्वारा	भाई वालूराम
30. इलाहाबाद उ.प्र., 24/05/95	निवास स्थान मोहनलाल वलेचा	भाई नन्दलाल
31. अहमदाबाद, गुजरात 01/06/95	सत सुखरामदास धर्मशाला	भाई राजोमल
32. राजकोट, गुजरात, 03/06/95	स्वामी टहिल्याराम दरबार	भाई वासुदेव
33. सोरठ वन्थली, गुजरात, 04/06/95	स्वामी जुड़ियाराम दरबार	भाई गोरधनदास
34. फैजाबाद, उ.प्र., 16/06/95	साई जगतराम दरबार	भाई मेघराज
35. सुल्तानपुर, उ.प्र., 16/06/95	निवास स्थान	भाई नारायणजी
36. प्रतापगढ़, उ.प्र., 17/06/95	बाबा गोपालदास धर्मशाला	भाई किशनचन्द्र
37. रायबरेली, उ.प्र., 17/06/95	सन्त कँवरराम विद्यालय	भाई सत्यानन्द सावलानी
38. बहराइच, उ.प्र., 20/06/95	धर्मशाला	भाई बशूमल
39. गोन्डा, उ.प्र., 20/06/95	झूलेलाल धर्मशाला	भाई झम्मटराम
40. बस्ती, उ.प्र., 21/06/95	कन्हैयालाल मिर्चूमल निवास	भाई हातिमलाल
41. गोरखपुर, उ.प्र., 21/06/95	सिन्धी धर्मशाला	भाई चन्द्रलाल
42. देवरिया, उ.प्र., 22/06/95	गुरु सिंह सभा गुरुद्वारा	भाई सोहनलाल
43. मऊनाथ भंजन, उ.प्र. 22/06/95	सिन्धी धर्मशाला	भाई गंगाराम

44. मुगल सराय, उ.प्र., 23/06/95	धर्मशाला	भाई कन्हैयाराम
45. वाराणसी, उ.प्र., 23/06/95	सन्त कँवरराम दरबार	भाई सुरेश कुमार
46. दतिया नगर, म.प्र., 30/07/95	सन्त कँवरराम दरबार	भाई डा० राजाराम
47. दतिया मप्र, 30/07/95	ज्योति धर्मशाला	भाई द्वारकादास
48. आगरा, उ. प्र., 31/07/95	काला महल धर्मशाला	भाई गोपीचन्द्र
49. मुरार, म.प्र., 31/07/95	बाबा हरदास राम दरबार	भाई घनश्यामदास जादवानी
50. लश्कर ग्वालियर, म. प्र., 01/08/95	झूलेलाल धर्मशाला	भाई घनश्यामदास जादवानी
51. डबरा, म.प्र., 01/08/95	लधाराम दरबार	बाबा श्रीचन्द्र साहिब
52. झांसी, उ.प्र., 02/08/95	सिन्धी दरबार	भाई लक्ष्मणदास
53. चिरगांव, उ.प्र., 02/08/95	निवास नन्दलाल	ओमप्रकाश भाई नन्दलाल
54. समथर, उ.प्र., 03/08/95	हनुमान मन्दिर	भाई मुन्नालाल
55. मोठ, उ.प्र., 03/08/95	सिन्धी दरबार	भाई सुगनामल
56. उरई, उ.प्र., 04/08/95	बारात घर	भाई रमेशलाल
57. कानपुर, उ.प्र., 05/08/95	शिवमन्दिर गोविन्द नगर	भाई लक्ष्मणदास सेवानी
58. उन्नाव, उ.प्र., 05/08/95	मोहन लाल धर्मशाला	भाई गोपीचन्द्र

59. सीतापुर, उ.प्र., 06/08/95	प्रेमनगर मन्दिर	भाई हासानन्द
60. लखीमपुर, उ. प्र., 06/08/95	धर्मशाला	भाई मूलचन्द्र
61. पीलीभीत, उ.प्र., 07/08/95	निवास स्थान	भाई विशनदास
62. बरेली, उ.प्र., 07/08/95	राधाकृष्ण मन्दिर	भाई मोहनलाल खट्टर
63. शाहजहापुर, उ.प्र., 08/08/95	निवास स्थान	भाई विशनदास
64. कटिहार, बिहार, 08/09/95	सिन्धी धर्मशाला	भाई हरुमल
65. रायगंज, बिहार, 09/09/95	निवास स्थान	भाई मुरलीमल
66. पूर्णिया, बिहार, 09/09/95	सिन्धी दरबार धर्मशाला	भाई गोविन्दराम
67. दरभंगा, बिहार, 10/09/95	सिन्धी दरबार	भाई मटिओमल
68. मधुबनी, बिहार, 11/09/95	निवास स्थान	भाई सीताराम
69. सीमामढ़ी, बिहार, 11/09/95	निवास स्थान	भाई गोविन्दराम
70. मुज्जफरपुर, बिहार, 12/09/95	सिन्धी धर्मशाला	श्री गुरु मुखदास (पंचायत)
71. मुंगेर, बिहार, 12/09/95	पार्क गुरुनामल	भाई प्रीतमदास
72. पटना, बिहार, 13/09/95	जयराम दास दरबार	भाई खीयालाल पंचायत
73. मवैया, लखनऊ, उ. प्र., सि. /09/95	सिन्धु भवन	भाई छंगामल राजपाल

74. भरतपुर, राज., 18/09/95	सांई धर्मदास दरबार	भाई मुखी नानकराम जी
75. वृन्दाबन, उ. प्र., 30/09/95	मिठड़ी अम्मा दरबार	भाई शंभूलाल जी
76. दिल्ली, 01/10/95	संत सतराम घाम	भाई सुरेशराम
77. मेरठ, उ.प्र., 02/10/95	सिन्धी धर्मशाला	भाई देवीदास
78. दिल्ली, रोहिणी, 02/10/95	हरीश निवास, रोहिणी	भाई राजकुमार (राजू)
79. किशन गढ़, राज., 04/10/95	सिन्धी धर्मशाला	भाई रामचन्द्र
80. अलवर, राज., 04/10/95	सिन्धी धर्मशाला	भाई भजनलाल
81. खैरथल, राज., 05/10/95	जीवनमुक्त आश्रम	भाई अमरलाल
82. तिजारा, महाराष्ट्र, 05/10/95	सिन्धी धर्मशाला	भाई जगदीश कुमार
83. जलगांव, महाराष्ट्र, 16/10/95	मंगल कार्यालय	भाई बलदेवराम
84. भूसावल, महाराष्ट्र, 16/10/95	सिन्धी पंचायती धर्मशाला	भाई बुधरमल
85. घूलिया, महाराष्ट्र, 17/10/95	स्वामी टेऊराम आश्रम	भाई पुरुषोत्तमदास
86. चालीसगांव, महाराष्ट्र, 18/10/95	बाबा हरदासराम धर्मशाला	भाई खट्टूमल
87. औरंगाबाद, महाराष्ट्र, 18/10/95	सन्त कँवरराम स्थान	भाई लक्ष्मणदास
88. परभणी, महाराष्ट्र, 19/10/95	सन्त कवरराम दरबार	भाई जगदीशलाल नारवानी

89. जालना, महाराष्ट्र, 20/10/95	सिन्धी धर्मशाला	भाई जगदीशलाल नारवानी
90. कल्याण, महाराष्ट्र, 21/10/95	हरीकीर्तन दरबार	भाई शखावतराय
91. टिल्डा, म.प्र.	हरदासराम स्थान	भाई हशमतराम
92. घोटकी, सिन्ध		
93. कमपुरमहर सिन्ध		
94. रोहिड़ी सिन्ध		
95. कंधकोट सिन्ध		
96. थुलु सिन्ध		
97. करमपुर सिन्ध		
98. सम्भर सिन्ध		
99. मीरपुर सिन्ध		
100. पन्नोआकिल सिन्ध		
101. हरिद्वार		

''आग लगी आकाश में, झर–झर गिरे अंगार।,
सन्त न होते जगत में, तो जल मरता संसार।।''

स्थानीय शिव शांति आश्रम लखनऊ में 6 अप्रैल को सन्त बाबा आसूदाराम जन्म शताब्दी समारोह के उद्घाटन सत्र में सिन्धियों के विख्यात सन्त चाँड्डूराम जी ने आज समाज को सन्तों की क्यों आवश्यकता हैं? परम पिता परमेश्वर ने सन्तों को क्यों इस संसार में भेजा है ? अपना आचरण कैसा रखना चाहिए? इन पर प्रवचन का कार्यक्रम किया। सन्त श्री चाँड्डूराम जी ने कहा, कि मानव जीवन का उद्देश्य इस संसार में आकर मात्र पेट भरना और सम्पत्ति एकत्रित करना ही नहीं है, बल्कि इस भवसागर में रहकर गुरू के नाम रूपी नाव का सहारा लेकर

अपने को इस चौरासी लाख योनियों के चक्र से मुक्त करना ही, मानव जीवन का प्रथम और अन्तिम उद्देश्य है।

दन्त चिकित्सा शिविर का उद्‌घाटन स्थानीय स्टेट बैंक, सिंगार नगर के बगल में, सरदार गेस्ट हाउस में, सन्त श्री चाँड्रूराम जी ने किया। डा० सरोज एस. जोशी, बी. ए. एम. एस. जाम नगर आयुर्वेदिक विश्वविद्यालय (जोकि विश्व का अकेला आयुर्वेदिक विश्वविद्यालय है) की आयुर्वेद दन्त चिकित्सा की स्नातक हैं। आप योग पद्धति और आयुर्वेदिक तरीके से बिना इंजेक्शन एवं एनस्थीसिया के सहारे दांतों को निकाल देती हैं। रोगी बिना किसी दर्द के तुरन्त घर जा सकता है। इस अवसर पर गुरू का लंगर अखण्ड रूप से चलता रहा। शाम को 4.00 बजे से महिला सत्संग हुआ। फिर रात्रभर अनवरत् रूप से सत्संग, भजन प्रवचन का कार्यक्रम चलता रहा।

शहर में संत श्री के नगर आगमन पर सर्वप्रथम जलाश्रम (प्याऊ) का उद्‌घाटन किया जाता, बहुत ही यत्न पूर्वक तैयार किये उस प्याऊ का नाम सन्त बाबा आसूदाराम साहिब जी के नाम पर ही रक्खा जाता। कुछ नगरों में तो 2–3 प्याऊ भी लगाए गये। कुछ नगरों में प्याऊ को स्थाई रूप देकर उसमें ठंडागार मशीन भी लगवायी गयी। कुछ शहरों में सन्त बाबा आसूदाराम जी के नाम से चिकित्सालय भी खोले गये, जिसका उद्‌घाटन संत श्री द्वारा किया गया, तत्पश्चात कार्यक्रम स्थल पर पहुँचकर संतों के संग चल रही भजन मंडली द्वारा अत्यधिक आकर्षण एवं मधुर संगीत द्वारा मनमोहक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। जिसमें राजगायक मास्टर बूलचंद (भरतपुर), सुश्री सत्यादेवी (वृन्दावन), भगत गुरमुखदास (नागपुर), तबला वादक पवन कुमार (फैजाबादी) एवं सेवक गण भी शामिल थे। फिर नगर के प्रतिभावान कलाकारों को भी मुख्य रूप से कार्यक्रम प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाता रहा। कार्यक्रम के अंत में संत शिरोमणी

सांईं चाँडूराम साहिब जी के मुखारविन्द से गुरुवाणी के अमृतवचनों की वर्षा होती, जिसका श्रवण कर भक्तगण अपने जीवन को सौभाग्यशाली बनाते। 3 घंटे का यह उत्सव, क्रम से सभी नगरों में प्रातः एवं सायंकाल होता रहा।

कार्यक्रम स्थल पर धार्मिक सामग्री का एक स्टाल लगाया जाता था, जिसमें संतों के चित्र, प्रवचन के कैसेट तथा साहित्य आदि उपलब्ध रहता था। इस शताब्दी वर्ष के सम्पूर्ण कार्यक्रमों में भजन मण्डली के सभी कलाकार पूज्य सन्त श्री के साथ सभी स्थानों पर रहें। सन्त बाबा आसूदारामजी के जीवन की झलकियों को प्रस्तुत करने एवं इस शताब्दी वर्ष के लक्ष्य की जानकारी देने एवं उस नगर में बनाई गयी समिति के उद्देश्यों को उजागर करते हुए, मंच के संचालन का भार मुख्य रूप से भाई सुन्दरदास खत्री, भाई सनमुख दास राजपाल, डा० घनश्याम दास (लखनऊ), भाई मेघराज जी (फैजाबाद) एवं भाई सत्यानन्द सावलानी (रायबरेली) ने कुशलता से निभाया। भाई राजकुमार, भाई सुनील कुमार, भाई राजेश कुमार (दिल्ली), भाई गुरुमुखदास खत्री, भाई इन्द्रलाल, भाई देवानन्द उर्फ कारो, भाई दरशन लाल भागिया, भाई भीष्म भागिया, भाई भगवानदास (लखनऊ), भाई सुन्दर बजाज (रायबरेली), भाई हशमतमल आत्माराम (कानपुर), भाई हरकिशन, भाई सुदामचन्द (राजनंदगांव), भाई जगदीश लाल (परभणी), भाई सुगनामल जी (मोठ), भाई बलदेव, भाई अमरलाल (जलगांव) तथा प्रिय सुशील कुमार रायतानी (गोन्डा) एवं भाई विजय कुमार (राजनंदगांव) तथा कुछ अन्य भक्तों ने भी, जिन सभी के नाम यहाँ नहीं दे पा रहे हैं, अलग–अलग स्थानों पर यात्रा में साथ रहकर, अपनी तन–मन से हार्दिक सेवाएं देकर, कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक करते हुए सन्तों एवं संगत का आशीर्वाद प्राप्त किया।

इस शताब्दी वर्ष की सम्पूर्ण यात्रा में एक बहुत महत्वपूर्ण बात यह रही, कि पूज्य सन्त जी के संकल्प और भावना भरी इस धार्मिक यात्रा में कहीं भी किसी प्रकार की क्षति एवं कोई विघ्न नहीं हुआ। सभी कार्यक्रम निश्चित तिथि तथा समय अनुसार चलते रहे। मानों सन्त बाबा आसूदाराम साहिब स्वयं उपस्थित होकर सभी कार्यक्रम अपने कर कमलों से निर्विघ्न करते रहे। इस प्रकार यह शताब्दी वर्ष 100 नगरों में अत्यन्त श्रद्धा एवं हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। इस शताब्दी समारोहों ने एक आदर्श स्थापित किया।

इसी के साथ सन्त बाबा जी का 101 वाँ जन्मोत्सव भगवत धाम हरिद्वार में उक्त आश्रम के पीठाधीश्वर स्वामी विवेकानन्द जी के आग्रह पर बहुत श्रद्धा एवं उदार भाव से समाप्त हुआ, जिसमें अनेक गुणी ज्ञानियों एवं सन्तों ने सम्मिलित होकर बाबाजी के गुणगान गाये ! हरिद्वार के 101 वें जन्म–उत्सव में परम पूजनीय सन्त चाँडूराम जी के साथ, जो जत्था हरिद्वार पहुँचा, उनकी संख्या भी संयोग से 101 ही रही। इस प्रकार शताब्दी के बाद का यह उत्सव मनाकर दूसरी सदी का श्री गणेश किया गया।

वर्ष 1995 को सख़ी बाबा आसूदाराम साहिब की जन्म-शताब्दी के रूप में पूरी भव्यता के साथ मनाने का भाव बाबासाईं चाँडूराम जी के मन में था। पूरे हिंद-सिंध के सख़ी बाबा प्रेमी बाबासाईं की इस भावना से जुड़े हुए थे और सख़ी बाबा की जन्म शताब्दी को पूरे ज़ोर-शोर से मनाने हेतु उत्साहित थे। फिर 10 अप्रेल 1995 की वो तारीख़ शिव शांति आश्रम के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में दर्ज़ हो गई, जब संत बाबा आसूदाराम सेवा समिति का जन्म हुआ। इस सेवा समिति के गठन से पहले ही बाबासाईं के आला दिमाग़ में सेवा समितियों के गठन

की रूप-रेखा, इसका ब्लू-प्रिंट तैयार था। इसलिए बाबासाईं के सुलझे हुए अनुभवी दिमाग़ के कारण संत बाबा आसूदाराम सेवा समिति का गठन बड़े ही नायाब अंदाज़ में हुआ। किसी भी नगर में इस सेवा-समिति के गठन हेतु, सबसे पहले नगर के पंज-प्यारों को मनोनीत किया जाना तय हुआ। अर्थात नगर के ऐसे पाँच व्यक्तियों का चयन, जो निष्काम तथा सात्विक जीवनशैली पर अमल कर रहे हों। मतलब जो जुआ-माँस-मद-हिंसा-चोरी तथा व्यभिचार से मुक्त हों और निष्काम भाव से सेवा हेतु तत्पर हों..। इन पंज-प्यारों को मनोनीत करने के बाद, इस समिति के लिए उसके अपने ही नगर में पाँच प्राथमिक सेवा-कार्य तय किए गए। पहला सेवा-कार्य था, सत्संग-सेवा। दूसरा जल-सेवा। तीसरा अन्न-सेवा। चौथा आरोग्य-सेवा। पाँचवाँ सहकार्य-सेवा। फिर इन पंज-प्यारों की सेवा से प्रभावित होकर निष्काम एवं सात्विक जीवनशैली अपनाने के लिए तत्पर अन्य नगर-वासियों को भी समिति में शामिल करके समिति के सहज विस्तार का रास्ता खोला गया।

बाबासाईं के दिमाग़ की यह संकल्पना इतनी सहज साध्य थी, और बाबासाईं के प्रेम-भाव का ही यह प्रभाव था, कि घोषणा होते ही, उसी एक दिन में, संत बाबा आसूदाराम सेवा समितियों का हिंद-सिंध के 36 नगरों में गठन हो गया। अर्थात जन्म के साथ ही इस सेवा-समिति के गठन ने हिंद-सिंध के 36 नगरों में अपनी बाँहे पसार दीं थीं। सख़ी बाबा के जन्म-शताब्दी वर्ष में हिंद-सिंध के 101 नगरों में बाबासाईं के सत्संग-कार्यक्रमों को नियोजित किया गया था। अब यह तो एक तयशुदा बात थी, कि जिन नगरों में संत बाबा आसूदाराम सेवा समिति होगी, बाबासाईं अपनी सत्संग-यात्रा के दौरान,

उस नगर में अवश्य पधारेंगे और वहाँ की संगत को अपने ही नगर में बाबासाईं के प्रवचन एवं दर्शन का लाभ मिलेगा। विशेष बात यह रही, कि बाबासाईं ने जब इन नगरों में सत्संग किया, तब अपनी ओर से भी न केवल वहाँ के सेवा-कार्यों हेतु सेवा-राशि भेंट की, बल्कि सत्संग के दौरान प्रेमियों द्वारा भेंट की गई धनराशि को भी सेवा-समिति को सुपुर्द कर दिया। इस अनूठी व्यवस्था के साथ संत बाबा आसूदाराम सेवा समिति का जन्म सन 1995 में हुआ और बाबासाईं की पावन छत्रछाया में इसका सहज ही विस्तार होता चला गया।

बाबासाईं के निर्देशानुसार निर्धारित रूप-रेखा में, सत्संग-सेवा के लिए, सुविधानुसार समय तय करके, नगर के किसी पावन स्थल पर, हर सोमबार को एक घंटा सत्संग किया जाने लगा। इसके साथ ही हर महीने में आने वाले सहाय सोमवार पर नगर की सारी सख़ी संगत के साथ मिलकर डेढ़ घंटे का सत्संग और आधा घंटा एक सभा आयोजित होने लगी, जिसमें बीते माह के सेवा-कार्यों की समीक्षा और अगले महीने की योजनायों पर विचार-विमर्श किया जाने लगा। हर महीने पूज्य चौडस साहिब के अवसर पर भी एक विशेष सत्संग का आयोजन होता है। इस तरह के हर सत्संग में शामिल होने के लिए नगर की बाकी संगत को भी प्रेरित किया जाता है, ताकि नगरवासियों को भी इस पावन आयोजन का लाभ मिल सके। अब यह सत्संग-सेवा कुछ नगरों में सप्ताह के सातों दिन नियमित रूप से चल रही है।

जल-सेवा हेतु प्रत्येक वर्ष गरमी के मौसम में नगर के महत्वपूर्ण स्थानों पर जगह-जगह संत बाबा आसूदाराम जलाश्रम की स्थापना की गई। पानी से भरे मटके रखवाकर

कहीं सख़ी बाबा की प्रेमी संगत स्वयं बारी-बारी से सेवा करती और कहीं किसी सेवाभावी व्यक्ति को इस कार्य के लिए नियुक्त किया जाता। बस-अड्डों पर, रेल्वे-स्टेशनों पर तथा भीड़ भरे बाज़ारों में, गरमी के तीन-चार महीनों तक नगरवासियों की प्यास बुझाने का पावन कार्य हर नगर में बिना नागा किया जाने लगा। अब तो अनेक नगरों मे वर्ष-भर चलनेवाली स्थायी शीतल जल-सेवा की मशीने स्थापित हो चुकी हैं, जो ट्वेंटी फ़ोर बाय सेवन, सप्ताह के सातों दिन चौबीस घंटे सेवारत हैं।

अन्न-सेवा के लिए नगर के निर्धन परिवारों को चिन्हित करके, उन्हें हर माह गुप्त रूप से निरंतर अनाज पहुँचाया जाने लगा। बाबासाईं के स्पष्ट निर्देश हैं, कि इन परिवारों के नामों का उल्लेख न किया जाए और न ही इस सेवा का प्रचार किया जाए, इसलिए अन्य स्वाभिमानी परिवारों को भी बेझिझक इस सेवा का लाभ मिल रहा है।

आरोग्य-सेवा के लिए बाबासाईं के भाव अनुसार एक सुविधाजनक जगह पर संत बाबा आसूदाराम धर्मार्थ होमियोपैथिक चिकित्सा-केंद्र की स्थापना करके उसका संचालन किया जाता है। दिन के एक निश्चित समय हेतु एक सेवाभावी होमियोपैथी डॉक्टर की सेवाएँ ली जाती हैं, जो नाम-मात्र शुल्क लेकर ज़रूरत मंदों का इलाज कर सके। सख़ी बाबा तो सबकी पीड़ा हरते हैं, ये आरोग्य-सेवा-केंद्र भी सख़ी बाबा की उसी दुःख-भंजनी सेवा का एक हिस्सा हैं।

विविध सहायता-सेवा के तहत असाध्य रोग एवं महँगे इलाज हेतु ज़रूरत-मंद नगरवासियों की आर्थिक मदद करना। ग़रीब कन्याओं के विवाह हेतु आर्थिक मदद करना। सर्व-शिक्षा

अभियान के तहत शिक्षण हेतु सुविधा-सामुग्री प्रदान करना। मासिक आर्थिक सेवा, नेत्र-चिकित्सा शिविर का आयोजन तथा यज्ञोपवित जनेऊ संस्कार जैसे आयोजन करना भी इसी सेवा का हिस्सा हैं। वैसे विविध सेवाओं की कोई सीमा नहीं है, समितियाँ चाहें, तो स्थानीय समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर, अपनी सेवा का दायरा बढ़ाकर हर तरह की अन्य परमार्थ सेवाओं को अपना सकती हैं। विशेष बात यह है, कि इन सेवाओं हेतु लगनेवाला धन उसी नगर के सेवादारियों या सेवा-भावी व्यक्तियों द्वारा जमा होता है।

संत बाबा आसूदाराम सेवा समितियों के इन सेवा-कार्यों को आशातीत सफलता मिलने लगी थी, सेवाओं का दायरा और समितियों की संख्या दिनोदिन बढ़ने लगी थी और इसके लिए सुनियोजित प्रबंधन ज़रूरी हो गया था। तब फरवरी सन 2000 में इन बढते हुए क्षेत्रों तथा गतिविधियों को ध्यान में रखकर साईं मोहनलाल की अध्यक्षता एवं श्री सत्यानंद जी सावलानी के महामंत्रित्व में भारतवर्ष की समितियों को 14 परिक्षेत्रों में बाँटकर, उनके लिए प्रभारी अध्यक्ष नामित किए गए। दिल्ली, अलवर, किशनगंज तथा तिजारा के लिए दिल्ली से श्री राजकुमार जी आनंदानी को मनोनीत किया गया। आलमबाग, मवैया, एल.डी.ए. तथा सीतापुर के लिए लखनऊ निवासी डॉ. घनश्यामदास भवनानी। रायगढ़, बिलासपुर, भाटापारा तथा टिल्डा छत्तीसगढ़ के इन नगरों हेतु रायगढ़ के डॉ. अर्जुनदास डेम्ब्रा। राजनंदगाँव, दुर्ग, भिलाई, पॉवर हाऊस, रायपुर तथा धमतरी के लिए श्री सुदामचंद जी मोटलानी। सीधी, रीवा, सतना तथा कटनी मध्य-प्रदेश के लिए सीधी के श्री वालूराम जी पहिलाजानी। रायबरेली, प्रतापगढ़ तथा

प्रयागराज के लिए वाराणसी के श्री विशनकुमार जी रूपाणी। अयोध्या, बहराइच तथा गोंडा के लिए अयोध्या के श्री मेंघराजमल जी खत्री इन्हें मनोनीत किया गया। इसी तरह से भोपाल, देवास, इंदौर, होशंगाबाद तथा इटारसी के लिए भोपाल निवासी श्री लखीराम जी सावलानी। कानपुर, मोठ, उरई तथा समधर के लिए कानपुर निवासी श्री सुनीलकुमार कुकरेजा। डबरा, दतिया, झाँसी तथा चिरगांव के लिए डबरा निवासी श्री सेवकराम जी रोहड़ा इनको मनोनीत किया गया। महाराष्ट्र के जलगाँव, भूसावल तथा उल्हासनगर के लिए जलगाँव निवासी श्री शंकरलाल जीवनमल। बिहार राज्य के कटिहार, पूर्णिया तथा दरभंगा के लिए कटिहार से श्री नारायणदास जी खुशवानी। कोलकाता, पकोड़ तथा पालीताणा के लिए कोलकाता से श्री विनयकुमार जी शर्मा। यवतमाल, अमरावती तथा नागपुर की समितियों के लिए श्री गोपीदास जी छत्तानी इन्हें प्रभारी अध्यक्ष मनोनीत किया गया।

प्रभु कृपा से समितियों के संचालन में इसके कारण सहज ही सक्रियता बढ़ गई। सन 2004 में सेवा-समितियों की संख्या तथा सक्रियता में सुधार करने के लिए इन 14 परिक्षेत्रीय अध्यक्षों पर एक प्रमुख परिक्षेत्रीय अध्यक्ष स्वरूप श्री गोपीदास छत्तानी जी को मनोनीत किया गया। बाबासाईं द्वारा समय-समय पर किए गए इन संगठनात्मक सुधारों के चलते किशोरावस्था में पहुँची इन समितियों को पंख लग गए और अब ये सेवा-कार्य ऊँची उड़ान भरने के लिए तैयार थे।

भारतवर्ष के उत्तर-प्रदेश, मध्य-पदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, राजस्थान, बिहार, दिल्ली, गुजरात, बंगाल तथा झारखंड इन प्रांतों के आलावा, पन्नो आकिल, घोटकी, मीरपुर,

खानपुर, करमपुर, कंधकोट, अब्दू, कशमोर तथा सख्खर जैसे सिंध-प्रांत के इन नगरों में भी संत बाबा आसूदाराम सेवा समितियाँ सुचारू रूप से कार्यरत हैं। इस प्रकार से वर्तमान में हिंद-सिंध में 50 से भी अधिक सेवा समितियाँ और उनके सभी सेवा-कार्य अनवरत ज़ारी हैं। सख़ी बाबा की कृपा एवं बाबासाईं के वरद-हस्त के कारण ही ये सभी सेवा समितियाँ परमार्थ सेवा करते हुए सफलता के नए कीर्तिमान स्थापित कर रही हैं।

मध्य-प्रदेश के दतिया ज़िले में संत बाबा आसूदाराम सेवा समिति की स्थापना के दिन से ही प्यारे दादा राजकुमार जी आनंदानी पूरे परिवार सहित तन-मन-धन से सेवा समिति के सेवा-कार्य करते चले आ रहे थे। पूज्य माता साहिब ने ही उनके नाम कालू की जगह उन्हें नया नाम दिया था, राजा। बस उसी दिन से वे राजकुमार के नाम से पुकारे जाने लगे और राजा के जैसी ही दरियादिली से उन्होंने अपना जीवन सेवा-भाव में गुज़ारा। पूरी तरह समर्पित प्यारे दादा राजकुमार जी के मन में यह भाव जागा, कि क्यों न दतिया में माता साहिब के आस्थान का निर्माण करवाया जाए। उनके इस भाव को मूर्त रूप देने का शुभ दिन आया 3 अगस्त 1997 को, जब दतिया में पूज्य माता साहिब की पावन स्मृति में शक्ति स्वरूपा माता साहिब बैंसरदेवी आस्थान की आधारशिला रख़ी गई। दतिया के इस आस्थान के भव्य भवन का निर्माण पूरा हुआ और 6 जून सन 2000 को बाबासाईं के करकमलों से आस्थान का भव्य उद्‌घाटन संपन्न हुआ। आगे चलके प्यारे दादा राजकुमार द्वारा इसका नवीनीकरण भी करवाया गया।

पन्नो आकिल एवं लखनऊ के बाद सख़ी बाबा का यह तीसरा आस्थान निर्मित हुआ था।

दतिया की सेवा समिति द्वारा पूज्य माता साहिब आस्थान के निर्माण एवं उसके भव्य उद्घाटन समारोह में देश की सभी सेवा समितियों के सदस्य शामिल हुए थे। इस आलीशान आस्थान के भव्य आयोजन को देखकर देश की सभी समितियाँ इस कदर प्रेरित हुई, कि बहुत सी समितियों द्वारा अपने नगर में आस्थान निर्मिति का भाव हिलोरें लेने लगा और परिणाम स्वरूप नगर-नगर में आस्थान निर्मित होने लगे, जिन्हें नाम दिया गया **संत बाबा आसूदाराम सत्संग भवन।** लखनऊ, हौशंगाबाद, दुर्ग, चिरगांव, इटारसी, रायपुर, अयोध्या (फ़ैज़ाबाद), रीवा, सीधी, रायगढ़, प्रयागराज-इलाहाबाद, गोंडा, भूसावल, नागपुर, दिल्ली, गिध्दपुर (संत आसूदाराम नगर), भोपाल तथा कानपुर जैसे आज देश के विभिन्न नगरों में 19 सत्संग भवनों का निर्माण पूर्ण हो चुका है, जहाँ प्रतिदिन नित-नेम के साथ सभी सेवा-कार्य पूरे उत्साह के साथ संपन्न हो रहे हैं।

जय सखी बाबा

ψΨΨΨψ

अध्याय–20

संत बाबा आसूदाराम साहिब 50वाँ निर्वाण महोत्सव

सितंबर 2010 को सद्‌गुरू सच्चे साईं का 100वाँ एवं सख़ी बाबा का 50वाँ निर्वाण महोत्सव संयुक्त रूप से मनाया गया। प्रभु कृपा एवं श्री सत्यानंद सावलानी के प्रयास से सख़ी बाबा के 50वें निर्वाण महोत्सव के शुभ अवसर पर सख़ी बाबा की पावन स्मृति में डाक विभाग द्वारा विशेष आवरण लिफ़ाफ़ा ज़ारी हुआ। इसी वर्ष बाबासाईं के आसन-विराजमान होने का 50वाँ साल सुवर्ण महोत्सव के रूप में मनाया गया। जिसमें पूज्य रहिड़की गुरु दरबार साहिब से पूज्य साईं साधराम साहिब द्वारा गुरुदर से लाई पगड़ी को स्वयं साईं साधराम साहिब द्वारा बाबासाईं को पहनाया गया। इसी वर्ष से बाबासाईं द्वारा सख़ी चालीहा साहिब मनाने की परंपरा शुरू हुई। सख़ी बाबा के निर्वाण महोत्सव से पहले 40 दिन का व्रत बाबासाईं संगत के साथ रखते हैं। शुरु में बाबासाईं के साथ 500 प्रेमियों ने सख़ी चालिहा साहिब का व्रत रखा, अब यह संख्या 3000 प्रेमियों की संगत तक पहुँच गई है । साईं मोहनलाल द्वारा सन 2015 में सख़ी बाबा चालीहा साहिब को 5 साल तक लगातार हर साल घर-घर में मनाने का प्रण हुआ, जिसे वर्ष 2019 तक सफलता पूर्वक मनाया गया।

सन 2010 इस वर्ष को सख़ी बाबा के 50वें निर्वाण महोत्सव के रूप में सारे भारत-वर्ष में मनाने की योजना बनी, जिसके तहत बाबासाईं के सत्संग देश के 50 शहरों में

आयोजित करने का लक्ष रखा गया था। यह सत्संग यात्रा आशातीत रूप में सफल रही और 50 की जगह कुल 73 शहरों में बाबासाईं के सत्संग सफलता पूर्वक आयोजित हुए।

सख़ी बाबा के 50वें निर्वाण-महोत्सव के दौरान भारत-वर्ष के जिन शहरों में बाबासाईं के सत्संग का आयोजन हुआ, उनकी सूची निम्नलिखित तख़्ते में दी जा रही है।

1. लखनऊ पूज्य शिव शांति आश्रम	2. अमरावती पूज्य ड॒वरी साहिब	3. दतिया पूजनीय माता साहिब आस्थान
4. भोपाल	5. रीवा	6. इंदौर
7. देवास	8. सतना	9. सागर
10. सिहोर	11. कटनी	12. मैहर
13. सीधी	14. इटारसी	15. खंडवा
16. नर्मदा पुरम	17. हरदा	18. झांसी
19. चिरगांव	20. उरई	21. प्रयागराज
22. अयोध्या	23. फ़ैज़ाबाद	24. गोरखपुर
25. गोंडा	26. रायबरेली	27. बरेली
28. सीतापुर	29. सुल्तानपुर	30. बहराइच
31. मोठ	32. वाराणसी	33. डबरा
34. कानपुर	35.मवैया,लखनऊ	36. देवघर

37. रायपुर	38. पॉवर-हॉउस	39. भिलाई
40. दुर्ग	41. राजनंदगांव	42. टिल्डा
43. रायगंज	44. भाटापारा	45. रायगढ़
46. बिलासपुर	47. धमतरी	48. कोलकता
49. पाकोड़	50. पुर्णिया	51. दरभंगा
52. दुर्गापुर	53. मुजफ़्फ़रपुर	54. आसनसोल
55. दल्लीराजा	56. कल्याणी	57. दिल्ली
58.एस.ए.आर.नगर	59. एटा	60. हरिद्वार
61. उल्हासनगर	62. परभणी	63. चालीसगांव
64. जलगांव	65. भूसावल	66. अकोला
67. यवतमाल	68. नागपुर	69. अहमदाबाद
70. भावनगर	71. पालीताणा	72. नढ़ियाद
73. गांधीधाम		

ψΨΨΨψ

अध्याय–21

पूजनीय माता साहिब बैंसरदेवी 25वाँ निर्वाण महोत्सव

वर्ष 2016 को पूजनीय माता साहिब बैंसरदेवी इनके 25वें निर्वाण महोत्सह के रूप में सारे भारत-वर्ष में मनाया गया। इस वर्ष देश के 20 शहरों में सत्संग कार्यक्रमों का सफलता पूर्वक आयोजन किया गया, विवरण के साथ जिनकी सूची निम्नलिखित तख़्ते में दी जा रही है।

अ.क्र.	दिनांक	आस्थान	संतजन
1.	19-8-2015	चिरगांव	पूज्य बाबासाईं
2.	06-3-2016	इटारसी	साईं हरीशलाल
3.	07-3-2016	नर्मदापुरम	साईं हरीशलाल
4.	08-3-2016	भोपाल	साईं हरीशलाल
5.	30-3-2016	प्रयागराज	पूज्य बाबासाईं एवं साईं मोहनलाल
6.	02-4-2016	रायपुर	पूज्य बाबासाईं एवं साईं मोहनलाल
7.	05-4-2016	राजनंदगांव	साईं मोहनलाल
8.	06-4-2016	दुर्ग	साईं मोहनलाल
9.	07-4-2016	रायगढ़	साईं मोहनलाल
10.	09-4-2016	नागपुर	पूज्य बाबासाईं एवं साईं मोहनलाल
11.	07-5-2016	रायबरेली	पूज्य बाबासाईं एवं साईं मोहनलाल

12.	08-5-2016	वाराणसी	पूज्य बाबासाईं एवं साईं मोहनलाल
13.	10-5-2016	जबलपुर	साईं हरीशलाल
14.	12-5-2016	रीवा	साईं हरीशलाल
15.	13-5-2016	सीधी	साईं हरीशलाल
16.	22-5-2016	फ़ैज़ाबाद	साईं मोहनलाल
17.	23-5-2016	गोंडा	साईं मोहनलाल
18.	26-5-2016	एस.ए.आर.नगर	साईं मोहनलाल
19.	11-6-2016	दतिया	पूज्य बाबासाईं, साईं मोहनलाल एवं साईं हरीशलाल
20.	20-6-2016	लखनऊ	पूज्य बाबासाईं, साईं मोहनलाल एवं साईं हरीशलाल

ψΨΨΨψ

धुनी–साहिब

पूज्य सन्त बाबा आसूदाराम साहिब

वार–वार वन्दन कयाँ, हथ जोड़े प्रणाम।
तुहिंजी मिहर मया साँ, थियन पूरण सभ जा काम।
के चवन पीरू पन्ने जो, के जतोइन जो जुवान।
थींदा सभ जा कल्याण, जे धुनी लगाइन प्रेम साँ।
राम चओ, राम चओ, सचो सतराम।
सचो सतराम चओ, सांई कंवरराम।
धनु आसूदाराम बाबा, धनु आसूदाराम।
धनु आसूदाराम बाबा, धनु आसूदाराम।

(1)

ईहो जतोइन जो जुवान आ, धनु आसूदाराम आ।
कंदो हरी गुणगान आ, धनु आसूदाराम आ।
डीदो सभ खे सम्मान आ, धनु आसूदाराम आ।
जहिंजी शेवा महान आ, धनु आसूदाराम आ।
कंदो धणीअ जो ध्यान आ, धनु आसूदाराम आ।
डींदो गरीबनि खे दान आ, धनु आसूदाराम आ।
जहिंसा रहिड़कीअ वारो साणु आ, धनु आसूदाराम आ।
धनु आसूदाराम बाबा, धनु आसूदाराम।

(2)

मुहिंजो प्रभू पन्ने वारो आ, धनु आसूदाराम आ।
जहिंखे हथ में यकतारो आ, धनु आसूदाराम आ।
पगड़ीअ वारे खे प्यारो आ, धनु आसूदाराम आ।
सेवादारनि जो सहारो आ, धनु आसूदाराम आ।
कंदो मनु न मुंझारो आ, धनु आसूदाराम आ।
मुहिंजो बाबा सभ खाँ न्यारो आ, धनु आसूदाराम आ।
हिते ईंदो भागन वारो आ, धनु आसूदाराम आ।
धनु आसूदाराम बाबा, धनु आसूदाराम

(3)

ईहो लखनऊ जो लाल आ, धनु आसूदाराम आ।
ईहो नंगी नंगपाल आ, धनु आसूदाराम आ।
ईहो गाइन जो गोपाल आ, धनु आसूदाराम आ।
ईहो दीनन जो दयाल आ, धनु आसूदाराम आ।
ईहो रहिबर रखपाल आ, धनु आसूदाराम आ।
कंदो सभ खे निहाल आ, धनु आसूदाराम आ।
मुहिंजो सांई कृपाल आ, धनु आसूदाराम आ।
धनु आसूदाराम बाबा, धनु आसूदाराम।

(4)

बांबो पूरी कंदो आस आ, धनु आसूदाराम आ।
कंदो कहिंखे न निराश आ, धनु आसूदाराम आ।
जहिंखे अन्दर में प्यास आ, धनु आसूदाराम आ।
तहिंजा कंदो कम रास आ, धनु आसूदाराम आ।
जेको रखंदो विश्वास आ, धनु आसूदाराम आ।
मन जी पूरी कंदो बास आ, धनु आसूदाराम आ।
कंदो कंहिंखे न उदास आ, धनु आसूदाराम आ।
धनु आसूदाराम बाबा, धनु आसूदाराम।

(5)

बाबो शिव जो अवतार आ, धनु आसूदाराम आ।
बाबो डेवरी जो डातार आ, धनु आसूदाराम आ।
बाबो दानी दातार आ, धनु आसूदाराम आ।
बाबो गरीबन आधार आ, धनु आसूदाराम आ।
लहंदो संगत जी सार आ, धनु आसूदाराम आ।
बुधंदो सभ जी पुकार आ, धनु आसूदाराम आ।
कंदो सभ जा बेड़ा पार आ, धनु आसूदाराम आ।
धनु आसूदाराम बाबा, धनु आसूदाराम।

(6)

ईहो नूरानी नूर आ, धनु आसूदाराम आ।
कंदो सभ दुःख दूर आ, धनु आसूदाराम आ।
ईहो हाजरां हुजूर आ, धनु आसूदाराम आ।
कंदो कष्ट काफूर आ, धनु आसूदाराम आ।
भाव भक्तिअ में भरपूर आ, धनु आसूदाराम आ।
हिन्दु सिंधु में मशहूर आ, धनु आसूदाराम आ।
ईही जाहिराँ जहूर आ, धनु आसूदाराम आ।
धनु आसूदाराम बाबा, धनु आसू दाराम।

(7)

बाबा पन्ने वाद्ये पीरु आ, धनु आसूदाराम आ।
बाबा पहुतलु फकीर आ, धनु आसूदाराम आ।
जहिंजी वाणीअ में तासीर आ, धनु आसूदाराम आ।
बाबा गहिरु गंभीर आ, धनु आसूदाराम आ।
बाबो सबुर जो सीरु आ, धनु आसूदाराम आ।
जहिंजी सुहिणी तसवीर आ, धनु आसूदाराम आ।
मेटींदो सभ जी तकसीर आ, धनु आसूदाराम आ।
धनु आसूदाराम बाबा, धनु आसूदाराम।

(8)

बाबो डींदो सभ खे ज्ञान आ, धनु आसूदाराम आ।
डींदो सच जो पैगाम आ, धनु आसूदाराम आ।
जहिंजो ऊँचो ऊँचो शान आ, धनु आसूदाराम आ।
कन्दो मिहर मिहरवान आ, धनु आसूदाराम आ।
मुहिंजो सांई सुबहान आ, धनु आसूदाराम आ।
धनु आसूदाराम बाबा, धनु आसूदाराम।

–जय सखी बाबा–

ψΨΨΨψ